द्वितीय अध्याय

'आलोच्य उपन्यासों का कथ्य'

द्वितीय अध्याय

''आलोच्य उपन्यासों का कथ्य''

2.1 कथ्य स्वरूप एवं परिभाषा -

कथ्य का पर्यायवाची शब्द है - कथानक, कथावस्तु और विषयवस्तु। कथानक या कहानी किसी भी साहित्य विधा का महत्त्वपूर्ण अंग है। कथानक या कथ्य का स्थान उपन्यास में रीढ़ की हड्डी के समान होता है, यह उपन्यास का मूलतत्त्व है जो अन्य तत्त्वों से अधिक महत्त्वपूर्ण होता है। कथानक वह वस्तु होती है जिस पर उपन्यास का भवन खड़ा होता है। कथानक को घटनाओं का लेखा जोखा भी माना जाता है। कथानक की परिभाषा देते हुए एड्वीन म्योर लिखते हैं- ''श्रृंखलाबद्ध घटनाओं और उनके परस्पर संबद्ध करनेवाले आधार को कथानक कहते हैं।''[1] कथानक कथा की विशेष्ट योजना, उसका नवीन विन्यास है। अपने उद्देश्य की पूर्ति के लिए जब उपन्यासकार क्रमबद्ध कार्य व्यापारों, चरित्र और विचारतत्व का संश्लेषण करता है तब कथानक की सृष्टि होती है और उसका उद्देश्य होता है एक विशेष प्रकार से पाठक के भावों और विचारों को प्रभावित करना। डॉ. त्रिभुवन सिंह के शब्दों में ''कहानी, विषयवस्तु अथवा पलाट का आधार अवश्य प्रस्तुत करती है, पर कथावस्तु कहानी अपेक्षा एक उच्च स्तरीय साहित्यिक संगठन है... कथावस्तु के द्वारा घटनाओं का ही सुनियोजित एवं सुव्यवस्थित विवरण प्रस्तुत किया जाता है।''[2]

कथानक में संबद्धता, मौलिकता, रोचकता, सरलता के साथ-साथ उसमें मानव जीवन की व्याख्या, मानव की समस्याओं का चित्रण, प्रतिनिधित्व का संकेत अनुभूतियों की पूर्ण अभिव्यक्ति आदि गुणों का होना आवश्यक है। कथानक वर्णात्मक, आत्मपरक, पत्रात्मक, डायरी शैली में प्रस्तुत किए जाते हैं।

हिंदी के आधुनिक उपन्यासकारों ने कथा में विस्तार की अपेक्षा गहराई, बहुलता की अपेक्षा घटनाओं की सूक्ष्मता को प्रधानता दी है। आरंभिक उपन्यास के कथानक लंबे एवं विस्तृत घटनाओं पर अधारित होते थे, आज छोटे-छोटे घटनाओं पर छोटे-छोटे लेकिन सर्वांगिन एवं संवेदनक्षम उपन्यास लिखे जा रहे हैं।

2.2 राजेंद्र यादव के 'शह और मात' का कथ्य -

स्वातंत्र्योत्तर काल के बहुमुखी प्रतिभा के धनी राजेंद्र यादव हिंदी में वरिष्ठ समालोचक, कहानीकार, निबंधकार तथा उपन्यासकार के रूप में प्रसिद्ध हैं। उनका जन्म 28 अगस्त, 1929 को उत्तर प्रदेश के आगरा शहर में हुआ। राजेंद्र यादव के अब तक आठ उपन्यास प्रकाशित हो चुके हैं। उनका प्रथम उपन्यास 'सारा आकाश' (1951) (आरंभ में 'प्रेत बोलते हैं' नाम से प्रकाशित) में संवादहीनता की समस्या को चित्रित किया है। 'उखड़े हुए लोग' (1956) में दुहरे संघर्ष की कहानी तो 'कुलटा' (1958) में नारी की स्थिति तथा मध्यवर्गीय धारणा को प्रस्तुत किया है। 'शह और मात' (1959) में लेखकीय व्यक्तित्व की समस्या को सटीक ढंग से चित्रित किया है। अपनी पत्नी मन्नू के साथ लिखा उपन्यास 'एक इंच मुस्कान' (1961) में मध्यवर्गीय लेखक की ट्रेजडी, पराजय और उसके खंडित व्यक्तित्व को अभिव्यक्ति दी है। 'अनदेखे अनजाने फूल' (1963) में कुरूपता की ग्रंथी की समस्या तथा सौंदर्य के स्वरूप को स्पष्ट किया है, तो 'मंत्र विद्ध' (1967) में युवक और युवतियों के बीच घटित और घटनीय तनाव के क्षणों को प्रस्तुत किया है। उनका अंतिम उपन्यास 'एक था शैलेंद्र' (2006) है। राजेंद्र यादव ने अपने उपन्यासों में महानगरों में स्थित मध्यवर्गीय व्यक्तियों के अभिशप्त जीवन को रूपायित किया है।

प्रकाशन क्रम की दृष्टि से 'शह और मात' राजेंद्र यादव का चौथा उपन्यास है। इसका प्रकाशन सन 1959 में अक्षर प्रकाशन से हुआ। 191 पृष्ठों का यह उपन्यास आदि से अंत तक डायरी शैली में लिखा एक नया प्रयोग है। उपन्यासकार ने उदय और सुजाता के माध्यम से लेखक की मानसिक उलझन तथा लेखकीय व्यक्तित्व की समस्याओं के साथ व्यथा तथा पीड़ा को उजागर करने का प्रयास किया है। इस उपन्यास में राजेंद्र यादव ने उदय के संपर्क में आने के बाद सुजाता की इक्यावन दिनों की मानसिक स्थिति को सूक्ष्मता से स्पष्ट किया है।

'शह और मात' उपन्यास का प्रमुख पात्र उदय एक उपन्यासकार है, जो प्रसिद्धि पाने में सफल हुआ है। उपन्यास के प्रारंभ में ग्रंथालय में उसका सुजाता से प्रथम परिचय होता है। सुजाता एम्. ए. में पढ़नेवाली छात्रा है और कहानीकार भी है। अंतर विश्वविद्यालयीन कहानी प्रतियोगिता में उसकी कहानी सर्वश्रेष्ठ सिद्ध हुई है। सुजाता की दो-तीन कहानियों ने कॉलेज तथा कॉलेज के बाहर धूम मचा दी है। उदय और सुजाता की मित्रता दिन-ब-दिन बढ़ने लगती है।

दोनों कॉलेज में तथा कॉलेज के कॅन्टीन में बार-बार मिलते हैं। सुजाता बातचीत के दौरान अपने अतीत के प्रेमी तेज के बारे में उदय को बताती है, जो उसे प्यार में धोका देकर नौकरी के बहाने लंदन जाकर वहीं अपना परिवार बसाता है। चर्चा के दौरान उदय के नये उपन्यास की नायिका रश्मि के बारे में सुजाता उदय से पूछती है, तो उदय उसे कहता है कि "उसे घनिष्ठता से जानता हूँ और परेल स्टेशन की ठंडी बेंचों पर उसके सपने देखते हुए कई रातें काटी हैं कि एक दिन उसके साथ फ्लैट लेकर यही कहीं रहूँगा। शान से गाड़ी पर घुमाऊँगा। उसके लायक अपने आपको बना सकूँ इसीलिए तो मैं यहाँ आया था।"[3] इस कथन से स्पष्ट है उदय रश्मि से प्यार करता था और उसके साथ जिंदगी बिताने के सपने देखता था। लेकिन अपनी फटीचर हालत के कारण उसका सपना अधूरा रह जाता है। वह बंबई शहर में आर्थिक अभावों के बीच तथा शहर की घुटन, प्रदूषग, महँगाई आदि से त्रस्त होकर अपना जीवन बीता रहा है। राजेंद्र यादव ने यहाँ महानगरों में रहनेवाले मध्यवर्गीय व्यक्ति की घुटनभरी जिंदगी तथा अनेक समस्या से ग्रस्त जीवन की ओर संकेत किया है। आज के महानगरों में रहनेवाले लोगों के जीवन में बदलाव नहीं आया है। मुंबई में महानगरीय जीवन जटील होने के कारण वहाँ का मध्यवर्गीय जीवन चिंतनीय और शोचनीय बना है। साहित्य में उसे पढ़कर समझना-समझाना लेखक का कर्म है, परंतु प्रमुख रचना के द्वारा उपन्यासकार ने उसकी ओर संकेत किया है। उदय पैसे कमाने हेतु अपने गाँव मेरठ को छोड़कर बंबई आया है। पैसों के लिए अपनी लिखी हुई कहानियाँ चोखेलाल को बेचता है तथा दूसरों के नाम पर प्रकाशित करने तैयार होता है।

इसी बीच सुजाता और उदय का मिलने का सिलसिला जारी रहता है। उदय का व्यक्तित्व सुजाता को बहुत प्रभावित करता है। वे एक-दसरे के अधिक करीब आते हैं। सुजाता अपनी लिखी कहानियाँ उदय को देकर उसमें सुधार करने को कहती है। सुजाता उदय पर कहानी लिखना चाहती है। सुजाता को अपनी कहानियों के प्रसिद्धि के कारण ढेर सारे पत्र आते हैं इसे वह अपने नाम के आगे लगे कुमारी शब्द का प्रताप मानती है। सुजाता अपनी सहेली रेखा को बताती है कि वह उदय पर ऐसी कहानी लिखना चाहती है जिससे शहर में धूम मचे। वह कहती है- "ऐसी कहानी लिखूँगी कि तहलका मच जाएगा। ये उपन्यासकार दुनिया भर को अपने उपन्यास में घीसटते हैं, जरा इनकी भी खबर ली जाए।"[4] सुजाता अध्येता बनकर उदय का अध्ययन शुरू

करती है। वह संकोच और झिझक छोड़ देती है। वह खुद को तटस्थ बनाने का प्रयत्न करने लगती है। मन-ही-मन सुजाता उदय को चाहने लगती है। उसके मन में द्वंद्व तथा आंतरिक संघर्ष शुरू हो जाता है। अध्ययन के लिए वह उदय के घर चली जाती है। उसकी मुलाखात उदय के पार्टनर मुलायम सिंह से होती है। उदय सुजाता को अपनी बहन अपर्णा के बारे में जानकारी देता है।

उदय के संदर्भ में भी सुजाता अध्ययन के लिए 'चाल' चलती है। 'चाल' चलते हुए वह अपने मन को समझा लेती है- "बिना चारा डाले कबूतर पास कैसे आएगा....?"[5] ऐसी ही चाल उदय सुजाता के व्यक्तित्व का अध्ययन करने के लिए चलता है। कॉलेज के नाटक में सुजाता ध्रुवस्वामिनी का रोल अदा करती है। उसे ध्रुवस्वामिनी रोल के लिए प्रिन्सेस अपर्णा के हाथों गोल्ड मेडल मिल जाता है। कॉलेज में ड्रामा देखने का निमंत्रण देकर भी उदय नहीं आता तो अगले दिन उदय को मिलकर गोल्ड मेडल की जानकारी देती है। सुजाता का मानना था कि प्रिन्सेस अपर्णा और उदय की बहन अपर्णा अलग-अलग हैं। उदय को मालूम था कि प्रिन्सेस अपर्णा याने की उसकी बहन अपर्णा के हाथों उसे गोल्ड मेडल मिला है। उदय प्रिन्सेस अपर्णा के जीवन पर उपन्यास लिखना चाहता था लेकिन उसकी पूरी जानकारी उसे नहीं मिलती थी।

सुजाता और प्रिन्सेस अपर्णा की मित्रता होती है। सुजाता प्रिन्सेस अपर्णा को मिलने बार-बार उनके घर जाती है। सुजाता अपर्णा की शानो-शौकत और चकाचौंध की ओर आकर्षित हो जाती है। दोनों का मिलना-जुलना बढ़ता है। इधर सुजाता उदय को अपर्णा की सारी बातें बताती है। सुजाता प्रिन्सेस अपर्णा पर कहानी लिखने की सोचती है। इधर उदय अपर्णा की जानकारी का उपयोग अपने उपन्यास लिखने के लिए करता है। उदय के साथ बढ़ते संबंधों के कारण वह भूल जाती है कि उदय उसके कहानी का पात्र है। वह 'चाल' के रूप में उदय के सामने 'चारा' डालती है, पर स्वयं उदय का 'चारा' बन जाती है। वह उदय का अध्ययन करते-करते भूल जाती है कि उदय उसके अध्ययन का विषय है। उसका ध्यान लेखक उदय से हटकर व्यक्ति उदय पर केंद्रित होने लगता है। इस अध्ययन प्रक्रिया के दौरान अपने तमाम उत्साह के बावजूद वह टुकड़ों में बँटती जाती है। वह कभी युवती सुजाता हो जाती है तो, कभी लेखिका सुजाता। वह उदय के प्रति लगाव और रागात्मकता को महसूस करते हुए हरदम उदय के खयालों में खोती जाती

है, लेकिन उसकी लेखिका बौद्धिकता उसे रोकती रहती है। यह द्वंद्व लेखिका और प्रेमिका का है, आकर्षण-विकर्षण का है। यही मध्यवर्ग की युवती की मनोदशा का यथार्थ चित्रण लगता है।

उदय सुजाता की भावुकता को देखकर उसे लेखन छोड़ देने को कहता है। उदय सुजाता से कहता है- ''मेरी समझ में सफल लेखक के लिए दो बातों की बहुत जरूरत है और वह तुम में नहीं हैं। एक तो उसे निहायत क्रूर होना चाहिए... और दूसरा लेखन के प्रति ईमानदार।''[5] उक्त कथन में राजेंद्र यादव ने लेखकीय कर्तव्य को स्पष्ट किया है। उनके अनुसार समाज की यथार्थ स्थिति का अंकन करने के लिए लेखक को खुद को भूलकर लिखना चाहिए तथा अपने लेखन के प्रति ईमानदार रहना होगा। सुजाता खुद की चली चाल में फँसती है और उदय की प्रेमिका बनती है। उदय सुजाता को उपन्यास का पात्र तो बनाता ही है लेकिन सुजाता के माध्यम से अपर्णा और अभिजात वर्ग का अध्ययन करता है। सुजाता को एक दिन प्रिन्सेस अपर्णा के नाम लिखा हुआ एक खत मिलता है, जिससे उसे उदय की असलियत का पता चलता है। सुजाता स्वयं को अपर्णा के अध्ययन की माध्यम बनाया जानकर सुजाता चकित रह जाती है तथा उदय के खिलवाड़ से दुःखी भी हो जाती है। सुजाता उदय से प्रेम करती थी लेकिन उसे यहाँ भी धोका मिलता है। पहले तेज प्यार में सुजाता को धोका देता है तो अब उदय। सुजाता उदय के इस व्यवहार से दुःखी भी होती है और क्रोधित भी, वह सोचती है- ''क्या हक था इसे मेरी भावनाओं से यों खिलवाड़ करने का ? जी में आता है कि पागल और उद्भ्रांत की तरह इसके सारे कपड़े चीर-चीरकर डालूँ, घूँसो और मुक्कों से इसे कूट-कूटकर बेहाल कर दूँ, नाखूनों और दातों से इसके चिथड़े उड़ा दूँ और फिर इसके मूँह पर खूब थूकूँ ले, और ले, और खेल।''[7] सुजाता उदय के प्रति अपने मन में क्रोध का भाव लेकर उसे मिलने जाती है तथा उसे इस तरह के व्यवहार की वजह पूछती है। उदय उसकी बात सुनकर हड़बड़ा जाता है और उसके सामने बताने से हिचकिचाता है। वह अपनी बात लिखकर देने का वादा करता है। उदय सुजाता को अपनी डायरी में लिखा एक पन्ना फाड़कर दे देता है। उदय उसमें अपने व्यक्तित्त्व का विश्लेषण करता है। वह सुजाता को बताता है कि किस तरह उसको अपर्णा के अध्ययन का माध्यम बनाया तथा उसके साथ किस तरह अन्याय किया गया ? वह लेखक उदय के द्वंद्व को भी उसके सामने रखता है। वह एक कलाकार की विवशता को स्पष्ट करते हुए कहता है- ''मुझे लगता है कि कलाकार सब कुछ हो सकता है- खुद

वह 'आदमी' हो ही नहीं सकता। हाँ ! वह आदमी का दूत होता हो, तो हो।''[8] उक्त कथन द्वारा राजेंद्र यादव ने स्पष्ट किया है कि श्रेष्ठ लेखक बनना कितना मुश्किल है। उसे अपने व्यक्ति रूप की आकांक्षाओं को पग-पग पर कुचलना पड़ता है। उसे क्रूर बनकर अपने लेखन के प्रति ईमानदार रहना पड़ता है।

सुजाता से चली चाल में जीतकर भी वह विजयजन्य ग्लानि का शिकार होता है। लेखक उदय की जीत होने पर भी व्यक्ति उदय पछताता है, मुक्ति के लिए छटपटाता है, उसे अपनी भावनाओं को दफनाना पड़ता है। सुजाता डायरी का पन्ना पढ़कर उदय को सच्चा लेखक मानती है, लेकिन उदय से कहती है- ''तुम चाहे जिसके दूत बनो, चाहे जिसके प्रति वफादार रहो- मगर मुझे यों सीढ़ी और सेतु मत बनाओ। मुझसे यह सब नहीं सहा जाएगा। मैं तो तुमसे डोर का एक सिरा बनकर मिली थी... कमन्द का सिलसिला नहीं।''[9] यहाँ लेखक ने सुजाता के लेखक रूप को हटाकर उसके नारी रूप को ही हमारे सामने रखा है। यहाँ यह सच है कि भारतीय नारी सीढ़ी या सेतु का काम कर रही है। परिणामतः दोनों ओर से शोषित, उपेक्षित रहने का दुःख सहती है।

अतः प्रस्तुत उपन्यास में उदय और सुजाता के माध्यम से लेखकीय व्यक्तित्व की समस्याओं का चित्रण किया है। आधुनिक काल में महानगरों में रहकर लेखन करने की समस्या तथा वहाँ अपने शक्ति रूप और भावनाओं को किस तरह दफनाना पड़ता है ? इसका सटीक चित्रण किया है। 'शह और मात' उपन्यास में राजेंद्र यादव ने महानगरीय जीवन (बंबई का) की व्यस्तता, जटिलता, खुरदरापन, टूटते मानवीय संबंध, घटते मानवीय मूल्य एवं जड़ मानवी संवेदनाएँ आदि का यथार्थ रूप में चित्रण किया है। महानगरीय परिवेश की विसंगतियाँ 'शह और मात' में केवल पृष्ठभूमि के तौर पर नहीं आयी, अपितु यह कथ्य का हिस्सा बनकर उभरी है। दूसरी ओर राजेंद्र यादव ने आधुनिक समाज में नारी की हैसियत और उसके संबंध मूल्य मर्यादाओं की चर्चा भी इस में की है। जैसे अपर्णा के साथ उसके पति द्वारा किया गया अभद्र व्यवहार, सुजाता के आचरण पर बुआजी की टिप्पणी जो नारी के प्रति पुरातन धारणाओं को स्पष्ट करते हैं। राजेंद्र यादव ने 'ध्रुवस्वामिनी' नाटक के प्रसंग द्वारा नारी मुक्ति का प्रश्न उठाया है जो हमें सोचने पर मजबूर करता है।

'शह और मात' उपन्यास में डायरी शैली का प्रयोग किया है। कहीं-कहीं आत्मकथात्मक शैली का भी प्रयोग है। उपन्यास की भाषा रोचक तथा प्रभावपूर्ण है। उपन्यास में जितनी कथा कहीं है उससे भी ज्यादा कथा लेखक ने अनकही छोड़ दी है। भाषा पर बंबई के शब्दों का प्रभाव है। इस उपन्यास में भाषा की अपेक्षा लेखक की अनकही कथा या पात्रों की चुप्पी ही अधिक मुखर होकर हमारे सामने आयी है। गीतों का प्रयोग भी उपन्यास को अधिक रोचक बनाता है। अतः 'शह और मात' राजेंद्र यादव जी की श्रेष्ठ एवं सफल कृति है, जो लेखकीय व्यक्तित्त्व की समस्या एवं उसके कर्तव्य को प्रखरता से स्पष्ट करती है।

प्रस्तुत रचना मध्यवर्ग की प्रातिनिधिक कृति है। बंबई में रहनेवाले परिवार की, लेखक उदय और सुजाता की कहानी है। उदय मध्यवर्ग का प्रतिनिधि तो सुजाता मध्यवर्ग की नारी-युवती का प्रमाण है। इनमें अपने व्यक्तित्त्व को अलग रखने की प्रधान प्रवृत्ति दिखाई देती है। प्रेम की असफलता, एक ओर से होनेवाला विफल प्रेम, प्रेम में बिखराव, घूटनशीलता, नारी की यौन भावना, लेखक की स्थिति आदि को राजेंद्र यादव ने चितेरा है, जो वास्तविक लगता है।

सच्चा साहित्यकार होने के लिए उसके मन में अपने पेशे के प्रति वफादार रहना चाहिए , जिसकी आज जरूरत है। इसमें महानगरों में रहनेवाले व्यक्ति तथा उनकी समस्याओं का चित्रण यथातथ्य रूप में मिलता है। अतः 'शह और मात' मध्यवर्ग का दर्पण है। मध्यवर्गीय जीवन की सही आलोचना करनेवाली यह रचना है। साथ ही महानगरों में रहनेवाले मध्यवर्ग की मनोदशा पर प्रकाश डालनेवाली कृती है।

2.3 मोहन राकेश के 'अंधेरे बंद कमरे' का कथ्य -

आधुनिक काल के बहुमुखी प्रतिभा के धनी साहित्यकार मोहन राकेश का जन्म पंजाब के प्रसिद्ध नगर अमृतसर में एक निम्न मध्यवर्गीय परिवार में 8 जनवरी, 1925 में हुआ। मोहन राकेश ने हिंदी साहित्य की सभी विधाओं में अपनी कलम की छाप छोड़ी है। आधुनिक काल की 'नई कहानी आंदोलन के प्रमुख आधार स्तंभों में से एक मोहन राकेश हैं। मोहन राकेश ने अपने व्यक्तिगत जीवन संघर्ष को साहित्य द्वारा वाणी देने का प्रयास किया है। अपने जीवन में उन्हें विषम परिस्थितियों, अपमानों, कुंठाओं और मानसिक तनावों का अनुभव करना पड़ा। 3 दिसंबर, 1972 को नई दिल्ली में मोहन राकेश का आकस्मिक निधन हुआ। उपन्यासकार के रूप

में उन्होने हिंदी को तीन रचनाएँ प्रदान की हैं। उपन्यासों में इन्होने अपने जीवन के यथार्थ को चित्रित किया है। उनका प्रथम उपन्यास 'अंधेरे बंद कमरे' (1961) मध्यवर्गीय जीवन की आशा-आकांक्षाओं को चित्रित किया है। 'न आनेवाला कल' (1968) एक अस्तित्ववादी जीवनदर्शन पर आधारित उपन्यास है, जिसमें लेखक ने भोगे हुए अनुभवों का उपयोग किया है। 'अंतराल' (1972) में व्यक्तिगत मान्यताओं के स्थान पर समस्त मानवीय मान्यताओं तथा मानसिक तनाओं का चित्रण किया है। इन उपन्यासों के अतिरिक्त 'साह और सफेद', 'काँपता हुआ दरिया' तथा 'कई अकेले' उनके अप्रकाशित उपन्यास बताए जाते हैं।

'अंधेरे बंद कमरे' मोहन राकेश की प्रथम औपन्यासिक कृति है। इस उपन्यास का प्रकाशन सन् 1961 में हुआ। 'अंधेरे बंद कमरे' मोहन राकेश का सबसे सफल तथा हिंदी का बहुचर्चित उपन्यास है। जिसका अनुवाद अंग्रेजी और रूसी भाषा में भी किया गया है। 'अंधेरे बंद कमरे' उपन्यास के लिए मोहन राकेश को 'साहित्य अकादमी पुरस्कार' से पुरस्कृत किया है। उपन्यास का कथानक चार भागों में विभाजित है। मोहन राकेश ने इस उपन्यास में दिल्ली के महानगरीय जीवन की दयनीय स्थिति तथा अभिशप्त मानवी जिंदगी को चित्रित किया है। अपनी पहचान के लिए पहचानहीन होते जा रहे भारतीय अभिजात वर्ग की भौतिक, बौद्धिक और सांस्कृतिक सपनों के अंधेरे बंद कमरों को खोलनेवाला यह उपन्यास हिंदी की महत्त्वपूर्ण चुनी कथा कृतियों में से एक है। प्रस्तुत उपन्यास मध्यवर्गीय समाज के बदलते हुए मानवीय संबंधों का प्रामाणिक दस्तावेज है। उपन्यास के प्रमुख पात्र हैं- 'मधुसूदन', 'हरबंस', 'नीलिमा', 'शुक्ला', 'जीवन भार्गव', 'सूरजीत' और 'सुषमा श्रीवास्तव' आदि। उपन्यास में प्रमुख रूप में हरबंस और नीलिमा के अंतर्द्वंद्व की कहानी है। इस उपन्यास में मानवीय जीवन की विसंगतियों एवं विवशताओं का चित्रण आधुनिकता के धरातल पर प्रस्तुत किया है। नीलिमा और हरबंस पारिवारिक जीवन के अंधेरे कमरे में बंद हैं और इस दृष्टि से उपन्यास का शीर्षक प्रतीकात्मक है। उपन्यास के शीर्षक की प्रतीकात्मकता को स्पष्ट करते हुए चमन-लाल गुप्ता लिखते हैं- ''उपन्यास का शीर्षक 'अंधेरे बंद कमरे' मध्यवर्गीय पात्रों की नियति को रेखांकित करता है क्योंकि यह पात्र अपने ही अचेतन के अंधेरे बंद कमरों में कैद है और उनसे निकलने का कोई उपाय इन्हें नहीं सूझ

रहा है।"[10] स्पष्ट है यह उपन्यास आज की शहरी समाज जीवन की आधुनिक मानव की विचित्र मानसिक स्थिति को सूचित करता है।

'अंधेरे बंद कमरे' उपन्यास की कथा मधुसूदन के माध्यम से कही गई है। वह उपन्यास का 'नेरेटर' है। मधुसूदन नौ सालों के बाद दिल्ली लौट आता है। उसे यह शहर बिल्कुल नया और अपरिचित लगता है। मधुसूदन हरबंस एवं शहर के बहुत से परिचित लोगों को मिलता है। हरबंस उन्हें घर आने की बात कहकर चला जाता है। मधुसूदन अपने बीते हुए दिनों की कथा कहता है। पहले-पहल जब वह दिल्ली में आया था तो अपने मित्र अरविंद के साथ दिल्ली के कसाबपुरा में रहता था, जहाँ निम्नवर्ग के लोग रहते हैं। यहाँ ठकुराइन, इबादत अली, इबादत अली की लड़की खुरशीद तथा अन्य लोगों की कहानी मधुसूदन ने बतायी है। दिल्ली जैसे महानगरों में निम्न वर्ग के लोग जिंदगी को मौत से बदतर कैसे जीते हैं ? इसका चित्रण लेखक ने किया है। मधुसूदन को भी अपनी आर्थिक विपन्नता के कारण दिल्ली की गंदगी और उपेक्षित विभाग में रहने के लिए बाध्य करती है। वहाँ वह गरीबी, बीमारी, गंदगी, प्रेम, दया और मनुष्यता की अनुभूति प्राप्त करता है जिनसे उनकी सहानुभूति उत्पीड़ितों के प्रति और बढ़ती है, मगर जिसका उपन्यास की मुख्य से कोई सरोकार नहीं है। पत्रकारिता में सफलता प्राप्त करने और आर्थिक स्थिति सुधर जाने के बाद वह एक अपेक्षाकृत अच्छे स्थान पर रहने चला जाता है। रिपोर्टर होने के नाते उसे कला, संस्कृति, सामाजिक प्रदर्शन और समारोह आदि में उन्हें मान-सम्मान प्राप्त होता है, परंतु अब घुटन का अनुभव होता है। लगता है सामान्य, निम्न स्तर से प्रगति करके ऊँचा पद पानेवाले के प्रति देखने की दृष्टि नहीं बदली, परिणामतः मधुसूदन में घुटनशीलता बढ़ती है।

मधुसूदन का हरबंस की पत्नी नीलिमा, उसकी बहनें शुक्ला और सरोज, शिवमोहन, जीवन भार्गव आदि का कॉफी हाऊस में हरबंस परिचय करवाता है। हरबंस इतिहास का अध्यापक है, जो मधुसूदन को अपना आत्मीय मित्र समझकर अपने सही जीवन से परिचित करवाता है। हरबंस नीलिमा के स्वतंत्र व्यक्तित्व से मुग्ध होकर उससे प्रेम विवाह करता है। हरबंस और नीलिमा के विवाहपूर्व के दिन अत्यंत आकर्षक, उत्तेजक एवं प्रेमपूर्वक बीत जाते हैं। विवाह के बाद भी हरबंस 'सावित्री', 'सवि' आदि नामों से संबांधित करता है। प्रारंभ के दिनों में आधुनिकता के प्रति लगाव के कारण नीलिमा को हरबंस पार्टियों और कॉफी हाऊसों की बहसों में

आने के लिए प्रोत्साहित करता है। साधारण परिस्थिति से संघर्ष करनेवाले मध्यवर्गीय परिवार के पास भौतिक संपत्ति आने से अनचाही विकृति बढ़ती है। नशापान, पाश्चात्यों का अनुकरण करने की होड़ लगती है। पार्टियों, कॉफी हाऊस, डिनर शो, ड्रग आदि का बढ़ता प्रभाव इसका ही प्रभाव है। इसी कारण महानगरीय जीवन समस्या में अटका है। नीलिमा को पेंटिंग और नृत्य के प्रति प्रोत्साहित करनेवाला हरबंस था लेकिन यह सब वह अपने अहं को पोषित करने के लिए करता है। जहाँ नीलिमा के द्वारा उसके अहं पर चोट पहुँचने का खतरा महसूस होने पर कतराकर भाग जाता है। इधर नीलिमा की बहन शुक्ला मधुसूदन की ओर आकर्षित होती है तथा वह भी उसे चाहने लगता है। मधुसूदन 'इरावती' के कार्यालय में एक सौ साठ रुपये मासिक वेतन की नौकरी करता है। मधुसूदन अक्सर नीलिमा और हरबंस को उनके घर तथा कॉफी हाऊसों में मिलता है। मधुसूदन को नीलिमा अपने नृत्य के बारे में जानकारी देती है।

हरबंस और नीलिमा का पारिवारिक जीवन अशांत बना हुआ है। दोनों हर समय एक-दूसरे पर कीचड़ उछालते हैं। हरबंस का स्वभाव ही शंकालू है, वह हर समय नीलिमा को संदेह की नजर से देखता है और उसे संबोधित करते हुए कहता है- "स्त्रियाँ सचमुच बहुत स्वार्थी होती हैं। शिवमोहन और भार्गव से आजकल इसे काम है, इसलिए उनकी इतनी खातिरदारी करती है कि हद है।"[11] हरबंस खुद उसकी अनेक लोगों से पहचान तो करवाता है लेकिन बाद में अपनी शकी वृत्ति से उनसे संबंध तोड़ने को कहता है। हरबंस एक उपन्यास लिखना चाहता है। उसने पचास-साठ पन्ने लिखे भी हैं लेकिन आगे कुछ लिख नहीं पाता है। वह मधुसूदन को इस समस्या के बारे में कहता है- "मुझे कुछ समझ में नहीं आता कि मैं क्या चाहता हूँ। कोई चीज है जिसे मैं बहुत शिद्दत के साथ महसूस करता हूँ, मगर... मगर जब लिखना चाहता हूँ तब कुछ भी लिखा नहीं जाता।"[12] अतः हरबंस का जीवन भी इसी प्रकार अनेक उलझनों में फँसा हुआ है। यह उपन्यास वह खुद के जीवन पर लिखना चाहते हैं। उनका जीवन घूटन, रीक्तता, अलगाव तथा अकेलेपन जैसे अनेक टुकड़ों में बटा हुआ है।

पारिवारिक जीवन के तनाओं और ऊबाहट से मुक्ति पाना चाहता है। नीलिमा के साथ रहते समय उसे कदम-कदम पर लगता है कि वह बहुत अकेला और अजनबी होता जा रहा है। जीवन भार्गव और शुक्ला की शादी के संदर्भ में नीलिमा और उसका झगड़ा हो जाता है।

नीलिमा का कहना है कि तुम्हारा कोई अधिकार नहीं इससे वह नाराज होकर वापस न आने के इरादे से घर छोड़कर चला जाता है। इधर शुक्ला के आकर्षण के कारण सुरजीत भी हरबंस के घर आता-जाता रहता है। हरबंस विदेश जाने के अपने निर्णय पर अड़िग रहकर वह इंग्लंड जाता है। हरबंस के चरित्र की सबसे बड़ी विड़ंबना यह है कि वह नीलिमा के साथ और नीलिमा से दूर रहकर भी सुखी नहीं रह सकता। वह जिस अकेलेपन की खोज में नीलिमा से दूर भाग गया था, वही अकेलापन जब उसे भोगना पड़ता है तब वह लंबे-लंबे खतों से अपनी तड़पती स्थिति का उल्लेख करता है। वह नीलिमा को संबोधित करते हुए लिखता है- ''मेरी मनःस्थिति इस समय बहुत विचित्र हो रही है, एक तरफ देखता हूँ तो हम लोगों के सहजीवन की यंत्रणा और प्रताड़ना नजर आती है और दूसरी तरफ यह निगलता हुआ सूनापन है- भीड़ से लदी हुई दुनिया के बीच अपना अकेलापन ! मेरा दिमाग बिल्कुल खाली हो गया है और स्नायु बिल्कुल जड़ हो रहे हैं। यहाँ आकर मैं पहले से अधिक अस्थिर हो उठा हूँ।''[13] यहाँ स्पष्ट है कि हरबंस की विवशता आधुनिक दांपत्य जीवन की सबसे बड़ी विडंबना है। लंदन में रहकर उसका अकेलापन और घुटन का अनुभव होने लगता है। इन पात्रों से लेखक मोहन राकेश ने हरबंस द्वारा आधुनिक युग के शहरी व्यक्ति का अकेलापन, खालीपन तथा अजनबीपन को स्पष्ट किया है। वियोगी प्रेमियों का सहारा खत ही होता है। अभिव्यक्ति का यही माध्यम बनता है। विदेश में रहनेवाले हरबंस इसका प्रमाण है, परंतु आज महानगरों में बदलती परिस्थितियों में खतों का महत्त्व कम हो चुका है। इस अकेलेपन और घुटन से छुटकारा पाने के लिए हरबंस नीलिमा को लंदन बुला लेता है। लंदन जाने से पूर्व नीलिमा मधुसूदन से राय लेना चाहती है, क्योंकि वह भरतनाट्य का नृत्य सिखने के लिए मैसूर जाना चाहती है। उसी दिन मधुसूदन आवेश में आकर ठाकुराइन के कंधों पर हाथ रखता है। वह निराश हो जाता है। अपमान तथा आत्मग्लानि से मधुसूदन नौकरी से त्यागपत्र देकर दिल्ली छोड़ देता है। यहीं उपन्यास का पहला भाग समाप्त होता है अर्थात् मधुसूदन के जीवन का एक अंक समाप्त हुआ। दूसरे भाग में मधुसूदन का नौ साल के बाद दिल्ली लौटना, हरबंस से मिलना तथा दिल्ली आने से पूर्व लखनऊ तथा गाँव में रहना आदि का चित्रण है। हरबंस मधुसूदन को अपने लंदन में बीते हुए दिनों की कहानी सुनाता है। नीलिमा जब लंदन आती है तो भरतनाट्यम सिखकर आती है और कई जगहों पर अपने नृत्य का प्रदर्शन भी किया। साथ-ही-साथ वह बताता है कि वह जब

लंदन में था तब सुरजीत और शुक्ला ने शादी कर ली। सुरजीत की पहली दो शादियाँ हो चुकी थी। इसी कारण हरबंस अब शुक्ला की सूरत भी नहीं देखना चाहता है। इस संबंध में वह कहता है- ''मैं उस लड़की को रात-दिन अपने घर में आते-जाते नहीं देखना चाहता। मुझे जो लोग अच्छे नहीं लगते उनकी मैं सूरत भी देखना पसंद नहीं करता।''[14] इस कथन में हरबंस की मनोव्यथा स्पष्ट होती है, वह मन-ही-मन शुक्ला को चाहता है। इसी कारण उसमें उसे न पाने की तड़प भी दिखाई देती है। शुक्ला में स्त्री सहज कोमलता की मात्रा कुछ अधिक थी। जहाँ नीलिमा की बौद्धिक-संपन्नता पुरुष के अनुशासन में रहना नहीं चाहती वहाँ शुक्ला को पुरुष का अनुशासन ही प्रिय लगता है। अनुशासनप्रिय शुक्ला के प्रति हरबंस झुकता है। उसका अवचेतन मन उसे चाहता है। शुक्ला को चाहने के कारण ही वह जीवन भार्गव, सुरजीत तथा मधुसूदन से ईर्ष्या एवं नफरत करता है क्योंकि इन सब के प्रति शुक्ला के मन में सम्मान है।

मधुसूदन एक दिन हरबंस के घर उसे मिलने जाता है, तो वह उसे लंदन के बीते दिनों की बात बताने लगता है। लंदन में जाकर किस तरह उसने संघर्ष में दिन बिताएँ ? उसने और नीलिमा ने तनावपूर्ण जीवन किस तरह व्यतित किया ? दोनों ने किस तरह अर्थाभाव में दिन गुजारे आदि का यथार्थ अंकन किया है। नीलिमा लंदन तो चली जाती है, लेकिन आर्थिक दुरावस्था के कारण उसे अनेक समस्याओं का सामना करना पड़ता है। नीलिमा के लंदन पहुँचने पर उनके दांपत्य जीवन में पारस्पारिक ईमानदारी और भावात्मक लगाव में दरारें पैदा हो गई। हरबंस को लगता था कि नीलिमा के आ जाने से उसका अकेलापन कम हो जाएगा, परंतु बाद में अनेक तनाओं और संघर्षों से उसे लगता है जैसे वह दुनिया से कट गया है। नीलिमा उसे हर वक्त कोसती रहती है। नीलिमा ने लंदन की दयनीय स्थिति के लिए हरबंस को दोषी ठहराया है। हरबंस नीलिमा के बरताव तथा खुद की स्थिति के संदर्भ में कहता है- ''उसने मेरे जीवन में उजाले की कोई किरण नहीं रहने दी। मैं तब से अब तक निरंतर अँधेरे में भटक रहा हूँ। जहाँ मुझे उजाले का कोई मार्ग नजर नहीं आता। मुझे लगता है मैं एक काल कोठरी में बंद हूँ और जीवनभर मुझे उस काल कोठरी में बंद रहकर हाथ-पैर पटकते जाना है।''[15] इन सभी बाधाओं के कारण थीसीस का काम अधूरा रह जाता है। वह न घर में ॲडजेस हो जाता है न बाहर। लंदन में नीलिमा की भेंट प्रसिद्ध नर्तक उमादत्त से होती है। उमादत्त की पार्टनर उर्वशी उसे छोड़कर भारत चली गई थी। वह उर्वशी की

जगह नीलिमा को यूरोप ट्रीप के लिए लेना चाहता है। हरबंस इसके लिए राजी नहीं होता है फिर भी नीलिमा चली जाती है। हरबंस नीलिमा और उमादत्त के संबंधों को लेकर चिंतित रहता था। ट्रीप के सभी लोग वापस आ जाते हैं लेकिन नीलिमा नहीं आती है। नीलिमा वापस आने पर ट्रीप के दरम्यान 'ऊबानु' के साथ बिताई रात के बारे में सब कुछ जानकारी देती है, लेकिन वह उस पर विश्वास नहीं करता है। उसके बाद नीलिमा स्थायी रूप में उमादत्त के ट्रुप में शामिल हो जाती है। ट्रुप के प्रबंधक के रूप में हरबंस पूरा युरोप घूमता है। हरबंस बीच में ही ट्रुप के लोगों से झगड़ा कर नीलिमा के साथ वापस दिल्ली लौट आता है।

दिल्ली लौट आने के बाद हरबंस नीलिमा के नीजी आकांक्षाओं के साथ समझौता करने का प्रयास करता है। वैसे हरबंस के व्यक्तित्व में 'अहं' कुछ ज्यादा ही था। वह हीन भावना का शिकार हुआ था। अपने कुंठित व्यक्तित्व के कारण वह अपनी पत्नी नीलिमा के चरित्र पर हमेशा शक करता था। वह स्वयं तो उलझता और दूसरों के साथ अव्यवहारिक बरताव भी करता है। शक करना, अहं का होना, हीनता का भाव रहना आदि मध्यवर्ग की विशेषताएँ दिखाई देती हैं। इन्ही प्रवृत्तियों के कारण उनका व्यक्तित्व पीड़ित उलझा हुआ बना है। नीलिमा उसके चरित्र पर प्रकाश डालते हुए कहती है- "उसके दिमाग को तो एक घुन-सा लगा है कि वह मेरे ऊपर शक किए बगैर रह नहीं सकता।"[16] हरबंस एक अस्थिर व्यक्ति है। वह शोध करना चाहता है, मगर थीसीस लिख नहीं पाता है। पत्नी से दूर होकर अकेला रहना चाहता है, लेकिन रह नहीं पाता है। इस प्रकार वह अपनी असफलता एवं अस्थिरता के कारण भीतर-ही-भीतर बहुत खीझा, घबराया, उखड़ा एवं टूटा हुआ दिखाई देता है। हरबंस और नीलिमा के पारिवारिक तनाव का परिणाम उनके बेटे 'अरुण' पर भी होता है। वह छोटी-सी उम्र में समझदार बन जाता है तथा घर में हमेशा डरा-डरा-सा रहता है। अरुण धीरे-धीरे अबनार्मल बनने लगता है। हरबंस के अहं एवं कुंठित भावना से नीलिमा तंग आती है।

तृतीय तथा चतुर्थ भाग में हरबंस और नीलिमा के दांपत्य में पड़नेवाली दरारों का मधुसूदन गवाह रहा है। इधर मधुसूदन को 'न्यू हेरॉल्ड' के संपादक राजनीतिक रिपोर्टिंग से हटाकर सांस्कृतिक रिपोर्टिंग काम सौंप देता है तथा काम के बारे में समझाता है। मधुसूदन अपने सांस्कृतिक न्यूज की प्राप्ति में लगा रहता है। इसी बीच वह कभी-कभी कॉफी हाऊस में नीलिमा

और हरबंस, सुरजीत से मिलता है। कॉफी हाऊसों में होनेवाली विविध पार्टियों का चित्रण यहाँ किया है। एक दिन मधुसूदन ठाकूराइन से मिलता है तब ठाकुराइन अपनी बेटी निम्मो को वर ढूँढ़कर देने का उससे वचन लेती है। नीलिमा अपना नृत्य का अभ्यास जारी रखती है। पोलिटिकल सेक्रेटरी नीलिमा के नृत्य तथा उसके भारतीय नृत्य संबंधी ज्ञान की प्रशंसा करता है।

दिल्ली के कला निकेतन नीलिमा को स्पाँसर करने की जिम्मेदारी लेता है। इसी वजह से नीलिमा कुछ लोगों को घर पर दावत के लिए बुलाती है क्योंकि इन लोगों के सहयोग से नृत्य प्रदर्शन सफल हो सकता है। लेकिन इस बात को लेकर नीलिमा और हरबंस में झगड़ा हो जाता है। नीलिमा आवेश में आकर हरबंस को कहती है- ''तुम सिर्फ हीन भावना के शिकार हो, लोग मुझे तुमसे ज्यादा जानते हैं और उनमें जो बात होती है वह तुम्हारे विषय में न होकर मेरे विषय में होती है। तुम्हें यह बात खा जाती है कि लोग तुम्हारी चर्चा नीलिमा के पति के रूप में करते हैं। तुम्हें डर लगता है कि अगर मेरा प्रदर्शन सफल हुआ तो लोग मुझे और ज्यादा जानने लगेंगे और तुम अपने को और छोटा महसूस करोगे।''[17] उक्त कथन से स्पष्ट होता है कि नीलिमा एक गर्विली नारी है। उसकी निजी आकांक्षाएँ हैं और वह अपनी ही रुचि में खोयी है। वह नाम, शौहरत, रुपया कमाना चाहती है। उसका व्यक्तित्व एक पश्चिमी सभ्यता से प्रभावित है। वह अपने लक्ष्य प्राप्ति के लिए किसी भी चीज को खोने के लिए तैयार है। इसीलिए वह अपने पति से समझौता नहीं कर पाती है। वह अपने स्वतंत्र अस्तित्व में विश्वास रखती है। यहाँ मध्यवर्गीय परिवर्तीत, अस्तित्व की रक्षा के लिए सजग रही नारी के दर्शन होते हैं। बदलते समाज स्थिति का यहाँ चित्रण किया है।

दावत के समय सुषमा श्रीवास्तव , गुप्ता साहब, पोलिटिकल सेक्रेटरी, मधुसूदन तथा अन्य लोग आते हैं। सुषमा के चरित्र के संबंध में लोग तरह-तरह की बातें करते हैं लेकिन मधुसूदन उसको चाहता है और सुषमा भी मधुसूदन को चाहती है। दोनों के बीच में विवाह को लेकर बात होती है लेकिन सुषमा विवाह करके मधुसूदन को साथ लेकर विदेश जाना चाहती है। इस पर मधुसूदन निर्णय नहीं ले पाता है।

हरबंस को नीलिमा के शो के टिकट बेचने की जिम्मेदारी दी जाती है लेकिन वह बेच नहीं पाता है। नीलिमा के शो के समय ही हरबंस की मॅनेजर से लड़ाई हो जाती है। नीलिमा का शो असफल हो जाता है। नीलिमा इसके लिए हरबंस के व्यवहार को उत्तरदायी समझाती है।

वह नृत्य छोड़ने का निर्णय लेती है। साथ-साथ वह इस नरकीय जिंदगी से छुटकारा पाने के लिए हरबंस के साथ रहना ठीक न समझकर अपनी माँ के पास हमेशा के लिए चली जाती है। मधुसूदन जब उसे समझाने जाता है तब वह हरबंस और अपने वैवाहिक जीवन के संदर्भ में कहती है- ''विवाहित जीवन में दो व्यक्तियों का शारीरिक संबंध ही सब कुछ नहीं होता...।''[18] इस कथन से स्पष्ट होता है कि नीलिमा और हरबंस के दांपत्य जीवन का बहुत पहले अंत हो चुका था लेकिन फिर भी दोनों उसे मजबूरन निभाते रहते थे। विवाह में शारीरिक संबंध के साथ आत्मिक संबंध, रिश्ते-अपनापन, भावों की एकता, मनोएकता का होना जरूरी है- जिसकी यहाँ कमी है। आज मध्यवर्गीय परिवार में इसके दर्शन होते हैं। उधर हरबंस कमरा बंद करके रातभर शराब पीता रहता है। उसकी हालत एक मरीज जैसी हो जाती है। कर्तव्यबोध से नीलिमा फिर वापस घर आ जाती है। मधुसूदन सुषमा के घर की ओर जाने के लिए निकलता है, लेकिन ठाकुराइन के घर जाकर निम्मो से शादी करता है। वह आधुनिकता से भागकर परंपरा को अपनाता है। यहाँ उपन्यास समाप्त होता है।

प्रस्तुत उपन्यास 'अंधेरे बंद कमरे' में मोहन राकेश ने महानगर दिल्ली के सांस्कृतिक पतन का चित्रण किया है। हरबंस और नीलिमा के माध्यम से पारस्पारिक ईमानदारी, भावात्मक लगाव और मानसिक दृष्टि से रिक्त दांपत्य जीवन का प्रभावपूर्ण चित्रण किया है। हरबंस मध्यवर्गीय व्यक्ति का प्रतिनिधित्व करनेवाला पात्र है जो दांपत्य संबंधों की सहज रागात्मकता, उष्मा और अर्थवत्ता की तलाश में भटक रहा है। हरबंस और नीलिमा सुशिक्षित तथा सुरुचि संपन्न है, लेकिन एक-दूसरे के प्रति संदेह दृष्टि तथा एक-दूसरे के अस्तित्व को नकारते हुए भी दोनों एक साथ जीवन बिताने के लिए अभिशप्त हैं। लेखक ने महानगरों में स्थित मध्यवर्गीय दांपत्य जीवन की अभिशप्त नियति को नीलिमा और हरबंस के द्वारा स्पष्ट किया है। साथ-ही-साथ यह उपन्यास महानगरीय जीवन के विविध आयामों जैसे पार्टियाँ, सांस्कृतिक डेलिगेशन, पत्रकारिता, कॉफी हाऊसों की बहसों का चलना, पत्नी को साधन बनाना, इसके विपरीत दूसरी ओर दिल्ली के कस्साबपुरा की गंदी गलियों में लोगों का कीड़ो-मकड़ों की तरह जीवन जीना आदि का यथार्थ चित्रण करके महानगरीय मध्यवर्ग का जीवन स्पष्ट किया है। मोहन राकेश ने 'अंधेरे बंद कमरे' उपन्यास में स्वातंत्र्योत्तर बदलाव और आधुनिक मानव की परिवर्तित मानसिकता के विविध

आयामों को आधुनिकता बोध के धरातल पर व्यक्त किया है। लेखक ने इस उपन्यास के द्वारा स्पष्ट किया है कि औद्योगिकरण, नागरीकरण और तकनीकी, पाश्चात्य संस्कृति का अंधानुकरण आदि के कारण मानव जीवन केवल बाहर से ही नहीं भीतर से भी बदल गया है। महानगरों में यांत्रिक दबावों के कारण मानव अधिक अकेला, अजनबी तथा घूटन, संत्रास से भरी जिंदगी जीने के लिए मजबूर है।

भाषा एवं शैली की दृष्टि से भी 'अंधेरे बंद कमरे' उपन्यास श्रेष्ठ है। उपन्यास की भाषा सजीव एवं रोचक है। इस उपन्यास में फ्लैश बैक शैली का विस्तार से प्रयोग किया है, क्योंकि पहले मधुसूदन तो बाद में हरबंस अपने अतीत के बारे में बताते हैं। उपन्यास में वर्णनात्मक शैली का यथोचित रूप से प्रयोग किया है। इस उपन्यास में लेखक ने प्रतीकों का भी सहारा लिया है। उपन्यास का शीर्षक 'अंधेरे बंद कमरे' नीलिमा और हरबंस के बंद मस्तिष्क का प्रतीक है, जो अपने दायरे या अहं को छोड़कर बाहर नहीं आते हैं। इसके अलावा अनेक प्रसंगों-घटनाओं में प्रतीकों का प्रयोग किया है। उपन्यास में अनावश्यक कथा का विस्तार भी दिखाई देता है।

निष्कर्षतः 'अंधेरे बंद कमरे' उपन्यास मध्यवर्गीय समाज के बदलते मानवीय संबंध, घटते मानवीय मूल्य, बढ़ती अनैतिकता, दांपत्य जीवन का विघटन, खोखली मानसिकता को रूपायित करने में सफल रहा है। स्वातंत्र्योत्तर काल की बदलती मनोवृत्ति, पति-पत्नी में आनेवाला अजनबीपन, उनमें होनेवाले संघर्ष, उससे प्रभावित बच्चे, नई पीढ़ी पर होनेवाले बुरे संस्कारों का प्रभाव, होटल संस्कृति का बढ़ता प्रभाव और टूटते परिवार आदि की ओर संकेत किया है। अतः मध्यवर्ग का वास्तविक चित्रण करनेवाली एक श्रेष्ठ रचना 'अंधेरे बंद कमरे' है। यही कमरे खुले होकर प्रकाशित होते तो समाज का भविष्य उज्वल होता यही आशावाद प्रकट करने में यह रचना सक्षम लगती है।

2.4 निर्मल वर्मा कृत 'वे दिन' का कथ्य -

स्वातंत्र्योत्तर काल के रचनाकारों में अपने अनूठे लेखन शैली के कारण अलग अस्तित्व बनानेवाले रचनाकार निर्मल वर्मा का जन्म 3 अप्रैल, 1929 में शिमला में हुआ। आधुनिक जीवन की अस्तित्व चेतना तथा आधुनिक जीवन बोध को अपने साहित्य के द्वारा उन्होने प्रस्तुत किया है। उन्हें हिंदी का प्रथम 'गद्य कवि' माना जाता है। हिंदी उपन्यास के क्षेत्र में

तीन मोड़ माने जाते हैं- उसमें पहला प्रेमचंद का 'गोदान', दूसरा अज्ञेय कृत 'शेखर एक जीवनी' और तीसरा मोड़ निर्मल वर्मा द्वारा लिखित 'वे दिन'। निर्मल वर्मा का सन 1952-53 में हिंदी साहित्य क्षेत्र में कहानीकार के रूप में आगमन हुआ है। उपन्यास के क्षत्र में उन्होंने प्रथम प्रवेश सन् 1964 में 'वे दिन' के साथ किया। आज तक उनके पाँच उपन्यास प्रकाशित हो चुके हैं। पहला 'वे दिन' उनका व्यक्तित्ववादी एवं युद्धोत्तर अभिशप्त जीवन को व्यक्त करनेवाला उपन्यास है। दूसरा उपन्यास 'लाल टीन की छत' (1964) में बाल मनोवैज्ञानिक समस्या को तो, तीसरा उपन्यास 'एक चिथड़ा सुख' में दर-ब-दर भटकनेवाले युवा वर्ग तथा व्यक्ति सुख की तलाश को रूपायित किया है। 'रात का रिपोर्टर' (1989) में संकटकालीन स्थितियों में व्यक्ति के उत्पन्न भय, संत्रास, अकेलापन तथा तनाव आदि का सूक्ष्म अंकन किया है। उनका पाँचवा उपन्यास है- 'अंतिम अरण्य'।

'वे दिन' प्रकाश क्रम की दृष्टि से निर्मल वर्मा का पहला उपन्यास है। इसका प्रकाशन सन् 1964 में हुआ, जो 272 पृष्ठों का है। कथ्य और शिल्प की दृष्टि से उनकी यह रचना नए जीवन बोध को प्रमाणित करनेवाली सशक्त कृति है। 'वे दिन' एक व्यक्तिवादी उपन्यास है जो मध्यवर्गीय शहरी मानसिकता से युक्त है। 'वे दिन' के संदर्भ में डॉ. शशिभूषण सिंहल का कथन है- " 'वे दिन' आदमी के 'एलियनेशन' (Alienation) या आत्मनिर्वासन की कथा कहता है।"[19] पारूकांत देसाई भी 'वे दिन' के संदर्भ में मानते हैं- "युरोप की महायुद्धोत्तर दिशाधारा पीढ़ी के संत्रास, घुटन, तनाव, मूल्यहीनता और रोतापन को रूपायित करनेवाला उपन्यास है।"[20] डॉ. लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय ने उसे "अधूरेपन की प्रक्रिया और सीमित परिवेश की उपज बताकर कथ्य की भर्त्सना की है।"[21] तो इंद्रनाथ मदान ने "हिंदी उपन्यास विधा का तृतीय महत्त्वपूर्ण मोड़ माना है।"[22] अतः स्पष्ट है विभिन्न आलोचकों ने अपनी-अपनी दृष्टी से 'वे दिन' पर विचार किया है। यह एक सोचने के लिए विवश करनेवाली रचना है।

आज के युग की मध्यवर्ग की संवेदना, पीड़ा, अलगाव की अनुभूति, अतीत से कटकर जीने की समस्या, वर्तमान को सबकुछ मानने की तीव्र लालसा तथा अजनबीयों के बीच का जीवन आदि अनेक आधुनिक जीवन के आयामों को यह उपन्यास प्रस्तुत करता है। द्वितीय विश्व महायुद्ध की पृष्ठभूमि पर इस उपन्यास की रचना की गई है। इसमें निर्मल वर्मा ने युद्धोत्तर पीढ़ी

की जटिल मानसिकता का चित्रण किया है। उपन्यास के शीर्षक से ही यह बोध होता है कि उसका संबंध बीते हुए दिनों से या पात्रों के अतीत से है। निर्मल वर्मा ने चेकोस्लावाकिया की राजधानी प्राग के क्रिसमस के चंद शांतिपूर्ण दिनों की कथा को प्रस्तुत किया है।

'वे दिन' उपन्यास में लेखक निर्मल वर्मा ने 'मैं' (इंदी) और 'रायना' ने बीताए तीन दिनों की कहानी को बड़े ही कलात्मक एवं संवेदनशील ढंग से समेटा है। उपन्यास के प्रमुख पात्र 'मैं' (इंदी), 'रायना', 'मीता', 'फ्रान्ज', 'मारिया', 'टी.टी.' (थानथुन) आदि हैं। उपन्यास का नायक भारतीय छात्र है जो फेलोशिप लेकर अध्ययन के लिए प्राग गया है। जो छुट्टियों में विदेशी टूरिस्टों के लिए 'इण्टरप्रेटर' का काम करता है। उपन्यास का आरंभ फ्लैश बैक याने पूर्वदीप्ति शैली में किया है, जो 'मैं' की मनस्थिति को खोलता है। 'मैं' को बार-बार रायना का यह कथन याद आता है कि "सच... क्या तुम विश्वास नहीं करते ?"[23] स्मृति में क्रौंधनेवाला वाक्य संशयग्रस्त मनःस्थिति को उजागर तो करता ही है और हमारी जिज्ञासा एवं कौतुहल को बढ़ाता है। 'चेंड्रौक टुरिस्ट एजेन्सी' द्वारा 'मैं' इंटरप्रेटर के रूप में ऑस्ट्रियन पति परित्यक्ता युवती 'रायना' से मिलता है। रायना अपने पुत्र मीता को प्राग घूमने लायी है। रायना और उसका पति जाक अलग-अलग रहते हैं पर बारी-बारी से छुट्टियों में मीता को बाँट लेते हैं। बाकी के दिनों को वह होस्टल में व्यतीत करता है। 'मैं' रायना के साथ तीन दिन रहता है। वियना जाने से पूर्व एक रात रायना 'मैं' के साथ होस्टल में गुजारती है। अब तक पुरुष स्त्री को भोगता था, यहाँ एक स्त्री पुरुष को भोगती है। बदलते यौन-संबंध की धारणा प्रवृत्ति को दर्शाते हुए पाश्चात्यों के प्रभाव को भी स्पष्ट किया है।

'रायना' पति 'जाक' के द्वारा परित्यक्ता है और वह अपने अकेलेपन से छुटकारा पाने के लिए इधर-उधर भटकती है। भारतीय नारी की तरह वह सदा सहारा ढूँढ़ती है, अकेली रहना नहीं चाहती। चाहे पति का हो या प्रेमि का हो लेकिन वह सहारा लेकर ही जीती है। परिणामतः नारी की कथा अकथनीय बनती है, वह बेसहारा होकर सहारा पाना चाहती है। यही भावना यहाँ स्पष्ट होती है। प्राग में 'मैं' के साथ बिताए दिनों में भी रायना को कभी-कभी अतीत में जीना पड़ता है। रायना का अतीत युद्ध की अभिशप्त व्यथा की कथा है। जब लड़ाई चल रही थी तब वह कोलन में पहली बार जाक से मिली थी और दोनों साथ में रहने लगे थे। दोनों साथ रहकर भी

15513

रायना को हमेशा लगता था कि उन्होंने हमेशा के लिए कोई चीज खो दी है। रायना को घर की शांति से अजीब-सा डर लगता है। रायना कहती है कि ''कोलन में हम ने कभी नहीं सोचा था कि हम जीवित रहेंगे। मरना तब बहुत पास था और आसान भी, हम शायद इसीलिए साथ रहने लगे थे... लड़ाई में बहुत लोग मरते हैं- इसमें कुछ अजीब नहीं है... लेकिन कुछ चीजें हैं जो लड़ाई के बाद मर जाती हैं- शांति के दिनों में... हम उनमें से थे।''[24] अतः रायना के अतीत के द्वारा लेखक ने स्पष्ट किया है कि युद्ध के बाद शांति के दिनों में जो चीज खत्म हो जाती है, मर जाती है वह है प्रेम और मानवीय संवेदना। रायना के जीवन पर युद्ध की भीषण छाया अब भी मँडराती है। उसमें व्यथा एवं अलगाव की पीड़ा भरी हुई है।

उपन्यास का नायक 'मैं' प्राग के एक होस्टल में रहता है। अपनी दुर्बल आर्थिक स्थिति के कारण उसे अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। कभी-कभी वह मारिया से उधार लेता है तो कभी छोटी-मोटी नौकरी करके अपना जीवन यापन करता है। कथानायक अपने परिवेश से कटा हुआ एक प्रकार की एकरस और ऊबाऊ जिंदगी जी रहा है। उसके लिए जिंदगी एक अर्थहीन भटकन है। 'मैं' का वह कथन इसका प्रमाण है- ''हम ऐसे वर्षों में घर को छोड़कर चले आए थे जब बचपन का संबंध उससे छूट जाता है और बड़प्पन का नया रिश्ता जुड़ नहीं पाता। अब घर बहुत अवास्तविक-सा जान पड़ता था, जैसे वह किसी दूसरे की चीज हो, दूसरे की स्मृति।''[25] इसी कटी हुई जिंदगी के कारण 'मैं' घर से आए खत को भी नहीं पढ़ता है। टी. टी. (थानथुन), फ्रान्ज, मारिया सब 'मैं' के मित्र हैं सभी अपने-अपने परिवेश से कटे और युद्ध की छाया से अभिशप्त जीवन जीने के लिए मजबूर हैं। इन सब की जीवन में शून्यता, निरर्थकता, परायापन, अवसाद एवं अलगाव बोध रहा है।

'मैं' 'रायना' और 'मीता' को प्राग शहर की सैर कराता है। कुछ साल पहले 'रायना' अपने पति जाक के साथ प्राग आ चुकी थी। 'मैं' रायना को प्राग शहर के प्रमुख स्थानों पर ले जाता है। उपन्यास में रायना का पुत्र 'मीता' जो परिवेश से पीड़ित है, उसका दोष न होते हुए भी उसे अवहेलना को सहना पड़ता है। माता-पिता अलग रहते हैं, उनकी अपनी जिंदगी है लेकिन 'मिता' दोनों के मनमुटाव का शिकार बनता है। वह समय से पहले ही समझदार बन जाता है। 'आपका बंटी' का 'बंटी', 'अंधेरे बंद कमरे' का 'अरुण' और यहाँ 'मीता' समान व्यक्तित्ववाले

मध्य परिवार की संतान हैं। मध्यवर्ग की यही समान प्रवृत्ति दिखाई देती है, जो दांपत्य जीवन के संघर्ष को दर्शाती है। रायना के साथ प्राग में तो जाता है, लेकिन वह रूम में अकेला रहता है, अकेला घूमता है। इस प्रधान कथा के साथ-साथ उपन्यास में फ्रान्ज और मारिया की कथा भी चलती है। मारिया और फ्रान्ज एक-दूसरे से प्रेम करते हैं। फ्रान्ज पूर्व जर्मन से यहाँ प्राग में सिनेमा स्कूल में अध्ययन के लिए आया है। फ्रान्ज प्राग छोड़कर बाहर जाना चाहता है। मारिया भी फ्रान्ज के साथ जाना चाहती है, लेकिन उसे वीसा नहीं मिलता है। फ्रान्ज और मारिया के जीवन में विरक्ति-सी छा गई है। दोनों युद्ध की छाया से अभिशप्त हैं। उनके सामने कोई उद्देश्य नहीं है। अपने अर्थहीन भटकन और उसे भुलावे में डालने के लिए 'मैं', 'टी-टी', 'फ्रान्ज', 'मारिया', 'रायना' आदि स्लिवोबित्से, चियन्ति, कोन्याक, बियर, सिगरेट आदि का झूठा सहारा लेते हैं। यही मानो उनका जीवन हो गया है। रात-दिन उपन्यास के भी पात्र शराब से सरोकार रहते हैं। हर पात्र अपने वैयक्तिक दायरे में ही जीता है, एक-दूसरे की जिंदगी में दखलअंदाजी नहीं करते हैं। इस शराब तथा अन्य वातावरण के संबंध में अतुलवीर आरोडा लिखते हैं- ''उपन्यास में शुरू से लेकर अंत तक एक भूला है। यह भूख सिगरेट की है, बीयर की है, जिस्म की है और इन सब के बीच अकेलापन साँप के फन की तरह तैनात है।''[26]

फ्रान्ज और मारिया एक-दूसरे के साथ रहते हैं, एक-दूसरे से प्रेम करते हैं लेकिन वे एक-दूसरे के प्रति उदासीन या अजनबियों-सा व्यवहार करते हैं। फ्रान्ज हर वक्त अपने भविष्य के बारे में सोचता दिखाई देता है। 'मैं' जब मारिया को पूछता है कि तुम फ्रान्ज के साथ क्यों नहीं चली जाती तो मारिया बताता है कि उसे मेरी जरूरत नहीं है। उधर फ्रान्ज मारिया के संदर्भ में 'मैं' से कहता है- ''तुम सोचते हो वह वीसा के लिए मेरे साथ विवाह करेगी ?''[27] अतः स्पष्ट है मारिया और फ्रान्ज एक-दूसरे से प्रेम करते हुए भी अपने वैयक्तिक जिंदगी के बारे में सोचते हैं। दोनों ही अलगाव एवं अकेलेपन की भावना से पीड़ित हैं।

टी. टी. (थानथुन) उपन्यास का एक महत्त्वपूर्ण पात्र तथा 'मैं' का मित्र और उसके साथ होस्टल में रहता है। अन्य पात्रों की तरह टी. टी. को मारिया प्यार से अपना लड़का मानती है। टी. टी. का जीवन भी दुःख, पीड़ा, उदासी और अकेलेपन से भरा है। माँ की शादी की खबर सुनकर वह दुःखी होता है, लेकिन फिर भी कहता है- 'माँ अकेली हो गई थी।' वह माँ की शादी के

मौके पर अकेला पीना नहीं चाहता है। 'मैं' को साथ लेकर वह माँ की शादी का जश्न मनाना चाहता है। लेकिन टी. टी. के मन में बहुत दुःख समाया हुआ है। वह 'मैं' को कहता है- '' 'डरो नहीं...' मैं अपनी माँ के विवाह की खुशी में अकेला नहीं पीऊँगा।''[28] अतः स्पष्ट है टी. टी. भी अपने घर से कटा हुआ तथा अपने जीवन में अकेलापन एवं रीक्तता को झेल रहा है। टी. टी. की माँ पुनर्विवाह करके अपने अस्तित्व की रक्षा करना चाहती है। माँ की शादी में दुःखी होना उसकी भावनाओं की स्थिति को दर्शाता है।

मैं और रायना के संबंधों में अपनापन बढ़ने लगता है। 'मैं' और 'रायना' प्राग के 'रिंक' पर, मॉन्टेसरी, चर्च आदि स्थानों पर जाते हैं। वो दोनों अधिक करीब आ जाते हैं। 'मैं' रायना से प्रेम करने लगता है और कभी-कभी उसके खयालों में खो जाता है। 'मैं' कहता है- ''उसने अपने चेहरे को बहुत धोने से मेरे मुँह से अलग कर दिया। मुझे लगा मैं वापस लौट आया हूँ, लेकिन उसी जगह नहीं, जो चंद लमहे पहले छूट गई थी। मुझे वह भयावह-सी लगी, वह अ-पहचान जो हम दोनों के बीच चूपचाप चली आई थी।''[29] अतः स्पष्ट है कि दोनों साथ होकर भी दोनों में एक दरार-सी दिखाई देती है। दोनों अकेलेपन की भावना से पीड़ित हैं। एक-दूसरे को खोने का डर हमेशा दोनों में रहता है। यह जो डर होता है वह चाहत के कारण होता है। 'मैं' तीन दिनों में ही रायना के इतने करीब जाता है कि वह उसे भूल नहीं पाता इसी कारण रायना के बताने पर कि मैं कल प्राग में नहीं रहूँगी तो उसे विश्वास नहीं होता है। वह उसे रूकने को कहता है लेकिन रायना उसे दोनों के बीच घटी घटनाओं को भूलने के लिए कहती है। रायना की जाने की बात सुनकर 'मैं' निराश तथा दुःखी हो जाता है। वह उदास तथा अकेला रहता है। रायना भी 'मैं' से चाहने लगती है, लेकिन वह इस सारे कार्यकलाप में निस्संग रहती है। वह प्रेम को शरीर की एक अनिवार्य आवश्यकता मानती है। वह 'मैं' के साथ शारीरिक संबंध आने पर 'मैं' उसे पूछता है कि 'तुम्हारे साथ अक्सर ऐसा होता है' तो रायना कहती है- ''मैं ज्यादा दिन अकेले नहीं रह सकती...।''[30] उक्त कथन से स्पष्ट है कि रायना घुम्मकड़ नारी है। सदा पुरुषों के साथ संबंध रखनेवाली अन्य बातों को महत्त्वहीन माननेवाली, बदली नारी की मानसिकता को दर्शानेवाली नारी है, जो नारी रूप पर सोचने के लिए विवश करती है। क्या इसके लिए कौन जिम्मेदार है ? यही सवाल है।

BALASAHEB KHARDEKAR LIBRARY
SHIVAJI UNIVERSITY KOLHAPUR

जाक से परित्यक्ता होने के कारण रायना अपने शरीर की भूख अन्य पुरुषों से पूरी करती है। अक्सर उसके साथ दूसरे शहरों में भी ऐसा ही होता है। रायना जो चाहती है वही करती है। यही उसके जीवन की भयंकरता है। रायना शारीरिक संबंधों में नैतिकता-अनैतिकता नहीं मानती है। वह सोचती है कि अगर दूसरे को कोई पछतावा न हो तो उसमें कोई बुराई नहीं है। वह कहती है- ''मैं सिर्फ यह चाहती हूँ कि दूसरे को बाद में पछतावा न हो... देन इज इज मिजरी।''[31] रायना इंदी को इस स्थिति को सामान्य ढंग से लेने को कहती है, लेकिन 'मैं' पर इसका बहुत दिनों तक गहरा असर रहता है। रायना होस्टल में एक रात बीताकर होटल जाने लगती है तो उसकी आँखों में आँसू आने लगते हैं। रायना भी 'मैं' को चाहने लगती है। रायना 'मैं' को होटल पर तथा स्टेशन पर आने के लिए मना करती है लेकिन मैं उसके साथ होटल पर जाता है। रायना थोड़ी ही देर में प्राग छोड़कर चली जानेवाली है इस भावना से ही 'मैं' दुःखी होता है। उसमें गहरा अकेलापन छा जाता है। वह निराश हो जाता है। 'मैं' फिर चेडौक टुरिस्ट कंपनी में जाकर नया काम लेता है। उसकी जिंदगी फिर से उसी तरह बितने लगती है जैसे पहले बितती थी।

अतः प्रस्तुत उपन्यास में लेखक निर्मल वर्मा ने युद्ध से उत्पन्न व्यर्थता, अकेलापन, तटस्थता, मृत्यु का भय, दुःख की स्थिति तथा रीतापन आदि संवेदनाओं को अपने पात्रों द्वारा रूपायित किया है। प्रत्येक पात्र की विवशता और अलगाव मानसिक स्तर पर अभिव्यक्त है। सभी पात्र एक मानवीय स्थिति और नियति से बंध हुए हैं उससे छूटकारा पाना चाहते हैं लेकिन छूट नहीं पाते। इसमें न सुख है, न दुःख, प्रत्येक व्यक्ति एक-दूसरे के लिए 'अंधेरा' है। सभी अपने-अपने जीवन में अकेलापन और रीक्तता को झेल रहे हैं। इस उपन्यास के सतह पर देखने से यहाँ शराब और औरत, अतृप्त लालसाएँ और संभोग, कुंठाएँ, अनैतिक आचरण एवं व्यर्थता बोध दिखाई देता है, लेकिन इसके अंदर एक संवेदना है वह आधुनिक मनुष्य की स्थिति और नियति की।

इस उपन्यास में लेखक ने युद्धोत्तर परिवेश को ही एक प्रकार से उपन्यास का नायक बनाया है। प्राग तथा प्राग के अन्य स्थान पब तथा रेस्टोराँ, विभिन्न शराबें, होस्टल तथा उसका वातावरण, रूम-पार्टनर के रातों को बाहर गुजारना, डान्स और स्केटिंग आदि जहाँ उसके

बाह्य या स्थूल परिवेश के दर्द को उभारता है, इस दिशाहीन पीढ़ी के अकेलेपन की घूटन का दर्द उसके सूक्ष्म परिवेश को उभारता है।

निर्मल वर्मा ने 'वे दिन' की समाप्ति परंपरा या लीक से हटकर कि है जो उपन्यास के भीतर उपजा है। यहाँ पात्रों के चरित्र में कोई परिवर्तन आना चाहिए वह भी नहीं आता तथा परंपरा से जहाँ कथा का अंत होना चाहिए था वह भी नहीं होता उसमें एक निरंतरता दिखाई देती है। उपन्यास के अंत में मनस्थिति को उलझाया या सुलझाया गया है। अतः उपन्यास का अंत जिस रूप में किया गया है वह आधुनिक जीवन की उपज तथा आधुनिक जीवन बोध के अनुकूल है।

भाषा एवं शैली की दृष्टि से भी 'वे दिन' निर्मल वर्मा की श्रेष्ठतम् कृति है। भाषा की प्रवाहमयता एवं लयता के कारण सारा उपन्यास एक काव्य और संगीतात्मकता का बोध देता है। प्रत्येक शब्द से सूक्ष्म संवेदनाओं का चित्र उभरता है। शैली की दृष्टि से इसमें पूर्वदीप्ति शैली तथा आत्मकथात्मक शैली का प्रयोग किया है।

निष्कर्षतः 'वे दिन' निर्मल वर्मा का आधुनिक बोध एवं अस्तित्ववादी उपन्यास है। जिसमें महायुद्ध से अभिशप्त मानव की दर्दनाक पीड़ा एवं नियति को अभिव्यक्त करने में सफल है। साथ ही मध्यवर्ग की मानसिकता, नई पीढ़ी के नारी की बदलती मान्यताएँ, शारीरिक संबंधों में बदलते मापदंड, भोगवादी प्रवृत्ति का बढ़ता प्रभाव, नारी के मनोवृत्ति से उत्तेजित पुरुष संस्कृति आदि पर भी यहाँ प्रकाश डालकर उपन्यासकार ने नई समाज व्यवस्था की ओर संकेत किया है। क्या यही समाज का भविष्य है ? अपनी मर्यादा संस्कृति भूलकर व्यवस्था बनानेवाले मध्यवर्ग को यही फटकारा है। वहाँ कौनसा द्वंद्व है ? कौनसे शस्त्र-अस्त्र हैं ? कौन शत्रु है ? उसपर भी सोचने के लिए यह विवश करता है कि मध्यवर्ग की रक्षा-दिक्षा को दर्शानेवाली एक अच्छी सफल रचना है।

2.5 मन्नू भंडारी के 'आपका बंटी' का कथ्य -

मन्नू भंडारी का जन्म 3 अप्रैल, 1931 में मध्य प्रदेश के मानपुरा गाँव में हुआ। हिंदी की आधुनिक कथा लेखिकाओं में मन्नू भंडारी का अग्रगण्य स्थान है। आपने अपनी रचनाओं में अनेक सामाजिक आयामों को अपनाकर अपनी व्यापक दृष्टि का परिचय दिया है। उनके कथा साहित्य की गहरी संवेदनशीलता, अनुभूति की सच्चाई और प्रस्तुति का अपना मौलिक

कलात्मक अंदाज आदि विशेषताएँ उन्हें हिंदी की एक श्रेष्ठ कथाकार सिद्ध करती है। मन्नू भंडारी ने 'महाभोज', 'स्थायी', 'एक इंच मुस्कान (राजेंद्र यादव के साथ)', 'आपका बंटी', 'कलवा' आदि उपन्यासों का सृजन किया है।

प्रकाशन क्रम की दृष्टि से 'आपका बंटी' मन्नू भंडारी का दूसरा उपन्यास है। इसका प्रथम प्रकाशन सन् 1971 में 'अक्षर प्रकाशन' दिल्ली से हुआ है। 217 पृष्ठों का यह उपन्यास आधुनिक पति-पत्नी के अहं के टकराव तथा तनाव से उत्पन्न स्थितियों के बीच एक बेकसूर बालक का पिसते जाना तथा बाल-मनोविज्ञान का चित्रण उपन्यास का केंद्रीय विषय है।

'आपका बंटी' का कथानक महानगरीय मध्यवर्गीय परिवार के तलाकशुदा दांपत्य जीवन से जुड़ा हुआ है। उपन्यास के प्रमुख पात्र अजय और शकुन पति-पत्नी हैं। दोनों के मनमुठाव और अलगाव की स्थितियाँ, उनके बेटे बंटी के बाल मन पर गहरा प्रभाव डालती हैं। वह भीतर-ही-भीतर घुटन महसूस करती है। वह सामान्य जिंदगी जी नहीं पाता है। कभी विद्रोह, कभी अकेलापन उसे संत्रस्त बनाए रखता है। अजय और शकुन दोनों अपना अलग-अलग घरौंदा बना लेते हैं, लेकिन बंटी उनसे ॲडजेस्ट नहीं हो पाता है। बंटी की ममी शकुन एक कॉलेज की प्रधानाचार्य है। बंटी भी कभी-कभी अपने ममी के साथ कॉलेज जाया करता था, लेकिन मगी का सख्त रूप तथा कॉलेज के उबाऊपन से बंटी कॉलेज जाना छोड़ देता है। बंटी की देखभाल ज्यादातर घर की नौकरानी फूफी ही करती है। कामकाजी नारी की यही स्थिति है कि वह अपनी पारिवारिक जिम्मेदारियाँ निभाने में असमर्थ होती है। यहाँ जिम्मेदारी उठानेवाली कामकाजी नारी है। ऐसे हालत में माँ की ममता का प्यासा बंटी नौकरानी की छाया में जाता है। बंटी ममी तथा फूफी से कहानियाँ सुनता है। टीटू बंटी का एक मात्र मित्र है। टीटू बंटी को बताता है कि तुम्हारे ममी-पापा का तलाक हो गया है। बंटी यह बात सुनकर अपमानित-सा हो जाता है। उसे लगता है कि मेरे ममी-पापा की बात दूसरों को मालूम है, ममी ने मुझे क्यों नहीं बताई ? दबी मानसिकता बाल मनोविज्ञान का प्रतीक है। बंटी यह सब बातें ममी से पूछना चाहता है। लेकिन पूछ नहीं पाता है। यही एक दिन ममी से पूछता है तो शकुन उसे कहती है- "कहने दो। इन लोगों के पास ये बातें न हो तो ये जिएँ कैसे बेचारे ?"[32] बंटी सोचता है ममी और पापा दोस्ती क्यों नहीं कर लेते हैं। बंटी की मनोदशा पर प्रकाश डालनेवाला यह विचार है। हर एक बेटा चाहता है कि उनके ममी-

पापा एक साथ रहे। डॉ. व्यंकटेश्वर का कथन है- ''मन्नू भंडारी कृत 'आपका बंटी' का बंटी माँ से अत्याधिक जुड़ा हुआ है। वह अपनी ममी के साधनों और प्रयत्नों को आत्मसात करना चाहता है।''[33] यहाँ पर इडियास ग्रंथी की उपस्थिति दिखाई देती है।

बंटी के पापा अजय बीच-बीच में बंटी को मिलने आते हैं। उसे ढेर सारे खिलौने लेकर देते हैं। वकील चाचा भी कभी-कभी शकुन से मिलने आते हैं। बंटी के लिए पापा से भेजे हुए खिलौने लाते हैं। बंटी सोचता है कि जब भी वकील चाचा आते हैं तो ममी उनके सामने चुप रहती है, उनमें एक अजीब-सी उदासी छाई जाती है, अजीब-सा तनाव उनके चेहरे पर आ जाता है। बंटी की बाल सुलभ मानसिकता ममी-पापा के बारे में की बातें सुनने की इच्छा रखती है। वह ममी और वकील चाचा की बातें छुप-छुपकर सुनता है। इनकी बातें समझ में न आने पर उसके मन में अनेक सवाल पैदा होते हैं, वकील चाचा, पापा, ममी और कचहरी की तारीख की संदर्भ में। इन सभी सवालों में बंटी का दम घुटने लगता है। ममी-पापा के इस संघर्ष में बंटी उपेक्षित-सा रहता है। अजय और शकुन का पारिवारिक जीवन दुःखी बन गया है। वकील चाचा शकुन से कहते हैं- ''जब एक बार धूरी गड़बड़ा जाती है तो फिर जिंदगी लड़खड़ा जाती है... फिर कुछ नहीं होता... कुछ भी नहीं...।''[34] प्रस्तुत उपन्यास अजय, बंटी और शकुन के जीवन की इसी लड़खड़ाहट को मर्मस्पर्शिता के साथ उकेरता है।

वकील चाचा बताता है कि 'अजय तुमसे कानूनी तौर पर तलाक लेना चाहता है' उनसे शकुन को पूरी तरह झकझोर दिया था। वैसे तो इसमें नया कुछ भी नहीं था, क्योंकि अजय और शकुन पहले से ही अलग रहते थे। उधर अजय ने दूसरी शादी कर ली थी और अपनी दूसरी पत्नी मीरा के साथ खुशी से दिन बिता रहा था, फिर भी शकुन को अपने मन के भीतर-ही-भीतर अनेक आँधी-तूफानों को झेलना पड़ता है। उसमें अकेलेपन के बोझ तथा दबाव के कारण वह कुछ अस्वस्थ-सी हो जाती है। शकुन और अजय के संबंध बिगड़ते हैं, शकुन सोचती है- ''उसने कई बार अपने और अजय के संबंधों के रेशे-रेशे उधेड़े हैं- सारी स्थिति में बहुत लिप्त होकर भी और सारी स्थिति से बहुत तटस्थ होकर भी पर निष्कर्ष हमेशा एक ही निकला है कि दोनों ने एक-दूसरे को कभी प्यार किया ही नहीं।''[35] उपर्युक्त कथन से स्पष्ट होता है कि अजय और शकुन के संबंध बिगड़ने की वजह वे खुद है, क्योंकि दोनों ने स्थिति को समझकर कभी एक-दूसरे के विचारों को न

समझा, न ॲडजेस्ट किया। फलस्वरूप पारिवारिक माहौल अशांत हो गया। शुरू के दिनों में अजय और शकुन दोनों गलत निर्णय लेते हैं। दोनों समझौते का प्रयत्न भी करते हैं, लेकिन दोनों में समझौता न होने से तथा एक-दूसरे को नीचा दिखाने और पराजित करने की मनोवृत्ति से दोनों में कभी न मिटनेवाली दूरी पैदा हो जाती है। दोनों ने अपने अहंभाव एवं शंकालु वृत्ति के कारण अपनी जिंदगी को अपने हाथों कुचल डाला था। शकुन अजय को नीचा दिखाने के लिए विभागाध्यक्ष से प्रिंसिपल हो जाती है। फिर भी अजय नहीं डगमगाता है। इससे उसके मन को गहरी चोंट पहुँचती है। उसे अपनी सारी प्रगति निरर्थक-सी लगती है। अजय को दुःख पहुँचाने के विचार से शकुन जो कार्य करती है उससे उसे ही मानसिक यातना को झेलना पड़ता है। शकुन तलाक की अर्जी, उस पर दस्तखत और अपना वैवाहिक जीवन, इन दिनों में किया हुआ संघर्ष तथा इन दिनों में क्या पाया ? इस संदर्भ में वह सोचती है- ''दस वर्ष का यह विवाहित जीवन एक अँधेरी सुरंग में चलते चले जाने की अनुभूति से भिन्न न था। आज जैसे एकाएक वह उसके अंतिम छोर पर आ गई है। पर आ पहुँचने का संतोष भी नहीं है, ढकेल दिए जाने की विवश कचोट-भर है। पर यह कैसा है छोर ? न प्रकाश न खुलापन, न मुक्ति का एहसास लगता है जैसे इस सुरंग ने उसे एक-दूसरी सुरंग के मुहाने पर छोड़ दिया है- फिर एक यात्रा वैसा ही अंधकार, वैसा ही अकेलापन।''[36] उपर्युक्त कथन में लेखिका मन्नू भंडारी ने आधुनिक महानगरीय जीवन के शिक्षित समाज का बढ़ता अहंभाव, असंतोषपूर्ण पारिवारिक जीवन, एक-दूसरे के प्रति बढ़ता अविश्वास आदि के कारण कई समस्याओं का निर्माण हुआ है, जिसे स्पष्ट किया है।

डॉ. ढेरीवाला का विचार है- ''मन्नू भंडारी कृत आपका बंटी की जो समस्या है वह विशिष्ट रूप में नगरीय परिवेश की पैदाइश है।''[37] अजय और शकुन के टकराहट के कारण है। दोनों शिक्षित, नौकरी शुदा, आर्थिक दृष्टि से आत्मनिर्भर हैं। फलतः वह पुरुष की बराबरी करने की आशा रखती है। शहरों में बसनेवाले इस मध्यवर्ग में हीनता, कुंठा, अकेलेपन एवं रीक्तता धीरे-धीरे इनके जीवन को नष्ट कर रही है। शकुन खुद को स्वतंत्र करना चाहती है। अजय से सारे संबंध तोड़ देना चाहती है। अतः वह अजय से तलाक लेती है, लेकिन तलाक लेने पर भी उस पर गहरा अकेलापन छा जाता है। शकुन के अकेलेपन के संदर्भ में रामदरश मिश्र जी लिखते हैं- ''शकुन की यातना और अकेलापन ऐसा नपुसंक अभिशाप है जो उसकी स्वाधीनता को बाँझ बना

देना चाहता है।''[38] स्पष्ट है शकुन अजय से मुक्त होकर भी अनेक यातनाओं से पीड़ित है। फिर भी शकुन अपनी जिंदगी को सहज बनाने तथा सवारने का असफल प्रयास जरूर करती है। वकील चाचा के अनुसार शकुन को व्यावहारिक बनकर अपनी खुद की जिंदगी के बारे में सोचना चाहिए। शकुन बंटी को होस्टल भेजना नहीं चाहती, क्योंकि उसे एक ओर स्वयं को अकेला हो जाने का डर है तो दूसरी ओर वह बंटी के द्वारा अजय को पीड़ा देना चाहती है। वह सोचती है- ''बंटी केवल उसका बेटा ही नहीं है। वह हथियार भी है जिससे वह अजय को टारचर कर सकती है।''[39] उपर्युक्त कथन से स्पष्ट होता है कि आज शहरों में बच्चों के साथ अपने माँ-बाप खिलौने की तरह व्यवहार करते हैं। पति-पत्नी के अनमेल संबंधों का तनाव इन निर्दोष बालकों को सहना पड़ता है। इससे उनका मानसिक स्वास्थ्य बिघड़ जाता है। बंटी इसी का प्रमाण है।

बंटी की माँ शकुन एक शिक्षित तथा नौकरी करनेवाली नारी है। बदलते सामाजिक परिवेश का उसपर गहरा प्रभाव है। वह अपने ही विचारों से अपना जीवन जीना चाहती है। वह किसी का बंधन नहीं मानती। इसी कारण अजय और उसके संबंधों में दूरी आती है। बंटी के लिए अपनी जिंदगी बरबाद भी नहीं करना चाहती है। मन्नू भंडारी शकुन के संदर्भ में लिखती हैं- ''शकुन चक्की पीस-पीसकर बेटे का जीवन बनाने में अपने-आपको स्वाहा कर देनेवाली माँ नहीं थी; बल्कि स्वतंत्र व्यक्तित्व, आकांक्षाएँ और आजीविका के साधनों से दृप्त माँ थी।''[40] नारी और माँ का आपसी द्वंद्व शकुन को नया रूप देता है। नारी का स्वतंत्र अस्तित्व एक चेतना बनता है, नारी को नया रूप प्रदान करता है।

अजय कलकत्ते से बंटी को मिलने के लिए कभी-कभी आता है। बंटी को खिलौने देकर शहर में घूमाता है। पूरा दिन बंटी के साथ बिताता है और वापस कलकत्ता लौट जाता है। बंटी ममी-पापा का झगड़ा मिटाकर उनमें दोस्ती कराना चाहता है, लेकिन वह कर नहीं पाता। बंटी जब पापा के पास होता है तब उसे ममी की याद आती है। बंटी की इसी स्थिति के संदर्भ में डॉ. हेमचंद्र जैन लिखते हैं- ''इन दोनों के बीच बंटी अपने आपको सदैव अनजाना, अनचाहा महसूस करता है। बंटी ममी के पास रहते हुए भी पापा के प्यार का आकांक्षी बना रहता है और बाप से मिलते रहने पर भी माँ के प्यार को पाने की चाह रखता है।''[41] अतः स्पष्ट है कि बंटी अपने ममी-पापा की लड़ाई में एक उपेक्षित पात्र बना हुआ है। उसमें धीरे-धीरे आक्रोश बढ़ता है।

BARR. BALASAHEB KHARDEKAR LIBRARY

वह सब चीजों से कटकर रहने लगता है। असमय आयी समझदारी बंटी के व्यक्तित्त्व को बदल देती है। बंटी में भी दिन-ब-दिन अकेलापन बढ़ने लगता है। वह चाहकर भी पापा की याद आने नहीं देता क्योंकि इससे ममी दुःखी होती है।

शकुन कुछ दिनों से डॉक्टर जोशी से संबंध बढ़ाने लगती है। डॉक्टर शकुन को मिलने के लिए घर पर आते हैं। डॉक्टर की पत्नी का देहांत हो गया है। डॉक्टर के अमि और जोत दो संतान हैं। डॉक्टर जोशी के कारण शकुन बंटी के प्रति ध्यान नहीं देती और बंटी को भी अपनी ममी को डॉक्टर द्वारा 'तुम' कहना अच्छा नहीं लगता है। वह डॉक्टर जोशी के प्रति आक्रोश रखता है। उसे अपनी ममी के पास डॉक्टर का सटकर बैठना, कंधों पर हाथ रखना अच्छा नहीं लगता। ममी को इस तरह देखकर बंटी के मन में अजीब-सी बेचैनी होती है। वह डॉक्टर को पापा कहने से इन्कार कर देता है। शकुन बंटी और अमि का झगड़ा होने पर बंटी को ही मारती है। इससे बंटी अपमानित होता है। बटी के बर्ताव से शकुन दुःखी हो जाती है और खुद को अपमानित महसूस करती है। डॉक्टर जोशी के रूप में बंटी को पापा मिल जाएँगे, लेकिन बंटी उनके प्रति कड़ा व्यवहार रखता है। शकुन डॉक्टर जोशी के प्रति आकृष्ठ हो जाती है। डॉक्टर के न मिलने पर उसमें अजीब-सी बेचैनी पैदा होती है, लेकिन डॉक्टर के स्वभाव की स्थिरता एवं ठहरावपन से शकुन को कुढ़न होती है। शकुन और डॉक्टर जोशी के संबंधों की बात पूरे शहर में फैल जाती है। इधर शकुन डॉक्टर के प्रति बंटी के व्यवहार से चिंतित थी। इसी कारण वह बंटी को डॉक्टर से अलग रखती... लेकिन धीरे-धीरे इसमें दरारें पड़ने लगती हैं। यही दरारें वह डॉक्टर और अपने संबंधों के बीच भी महसूस करती है। डॉक्टर जोशी और शकुन शादी कर लेते हैं। शकुन बंटी को लेकर डॉक्टर जोशी के घर चली जाती है, लेकिन बंटी डॉक्टर के घर में सबसे अलग रहकर अपना अलग अस्तित्व बनाए रखता है। वह न शकुन के पास जाता है न अमि और जोत के पास। घर से जाते वक्त फूफी जो बंटी के भविष्य के बारे में चिंतित है वह शकुन से कहती है- ''सहाब (अजय) ने जो किया तो आप की मिट्टी पलीद हुई और आप जो कर रही हैं इस बच्चे की मिट्टी भी पलीद होगी।''[42] उपर्युक्त कथन से स्पष्ट होता है कि अजय और शकुन अपनी-अपनी जिंदगी को बसाने के लिए बंटी की बली देते हैं। बंटी हर क्षण घुट-घुटकर जीने के लिए अभिशप्त है।

डॉ. जोशी के घर जाने के बाद बंटी की जिंदगी ही बदल जाती है। बंटी एक बेकार की वस्तु बनकर रह जाता है। वह अपनी तुलना घर से गठरी में बाँधकर लाए चीजों से करता है, जो एक कमरे में अस्त-व्यस्त ढंग से पड़ी हैं। उसे अपनी तरह वह चीजें भी उदास-उदास लगती हैं। बंटी डॉक्टर जोशी और ममी को नंग-धडंग देखता है। ममी के प्रति उसके मन में घृणा निर्माण होती है। उसका बाल मन इन बातों को औत्सुक्य से देखता है। वस्तुतः बंटी अपने घर से उखड़कर सब जग उखड़ गया-नये घर में- स्कूल में। डॉ. मृत्युंजय उपाध्याय मानते हैं कि ''साथ रहने की यंत्रणा जब अलग रहने की पीड़ा से अधिक हो जाए तो अलगाव ही बेहतर होता है।''[43] इसी कारण टूटते पारिवारिक संबंधों में अलगता दिखाई देती है, यह कथन इस उपन्यास के लिए यथार्थ लगता है। बंटी का उखड़ना, अपने आपको व्यर्थ तथा बेकार चीज मानना अलगाव का संकेत है।

बंटी अपनी मन की बातें, ममी के प्रति शिकायत पापा से चिट्ठी लिखकर करना चाहता है। बंटी को दिन-ब-दिन ममी को पीड़ा देने में सुख मिलने लगता है। वह प्रतिशोध की भावना से ग्रस्त होता है। बंटी द्वारा लिखी चिट्ठियाँ शकुन को मिलती हैं, शकुन बंटी को पूछती है कि 'तुम सचमुच पापा के पास चले जाना चाहते हो ?' बंटी कलकत्ता जाना तय करता है। बंटी को लगता है कि 'मेरे जाने से ममी को दुःख होगा और होना भी चाहिए। बंटी के चले जाने से शकुन दुःखी होती है, लेकिन करती भी क्या बंटी हर दिन एक नया हंगामा डॉक्टर जोशी के घर खड़ा कर देता था। बंटी के जाने के बाद उसके मन में द्वंद्व चलता है। वह सोचती है कि बंटी की तरह वह अमि और जोत से प्यार कर सकेगी। यहाँ उनके मन में अपना-पराया, अपनत्व-परायापन का संघर्ष जारी रहता है। अजय बंटी को हमेशा के लिए अपने साथ कलकत्ते में रख लेने का निर्णय लेता है लेकिन वहाँ भी बंटी अजय और मीरा के साथ ॲडजेस्ट नहीं हो पाता है। बंटी उनसे भी कटा हुआ तथा उदास रहता है। उसे वहाँ शकुन की बार-बार याद आती है। अंत में अजय भी बंटी को होस्टल में रख देता है। आज मध्यवर्ग में बच्चे को होस्टल में रखने की प्रवृत्ति पनप रही है। शिक्षा के नाम पर यह हो रहा है, परंतु यहाँ बंटी के साथ ऐसी घटना नहीं- अलग रहने का इसका कारण है, जो सब को दुःख पहुँचाता है।

अतः प्रस्तुत उपन्यास में बंटी को माध्यम बनाकर शकुन और अजय एक-दूसरे के प्रति अपने भीतरी असंतोष और आक्रोश को समर्पण भाव में बदलने की कोशिश करते हैं। उनका

निष्ठुर अहं बंटी के संवेदनशील व्यक्तित्व के कोमल सूत्र को धीरे-धीरे नष्ट करता है। बंटी के लिए एक घर में उसकी ममी है, किंतु पापा नहीं। दूसरे घर में उसके पापा हैं, किंतु ममी नहीं। इसलिए उसकी नियति वहाँ रहने में है, जहाँ दोनों नहीं और शायद वह खुद भी नहीं है। मन्नू भंडारी जी बंटी की जीवन यात्रा के संदर्भ में स्वयं लिखती हैं- ''बंटी मुझे तूफानी समुद्र-यात्रा में किसी द्वीप पर छूटे हुए अकेले और असहाय बच्चे की तरह नहीं वरन् अपनी यात्रा के कारणों के साथ और समानांतर जीते हुए दिखाई दिया।''[44] अतः स्पष्ट है कि बंटी को अपने जीवन में खुद लड़ना पड़ता है, जीवन संघर्ष को झेलना पड़ता है, वहाँ न ममी है न पापा। उसे खुद अपनी पहचान बनानी है। 'आपका बंटी' में बंटी के प्रति करुणा जगाना लेखिका का उद्देश्य नहीं है तो वह बुद्धि के स्तर पर पाठकों को इस ज्वलंत समस्या के विषय में सोचने को प्रेरित करना चाहती है। इस उपन्यास में आज के जीवन में व्याप्त रिक्तता, उदासी और परिस्थितिजन्य विवशता के कारण व्यक्ति भीतर-ही-भीतर टूटते जाने की नियति को चित्रित किया है। इसमें एक ओर आधुनिक शिक्षित नारी की पीड़ा को इसमें संवेदनशीलता से उकेरा है तो दूसरी ओर आधुनिक जीवन की कृत्रिमता और खोखलेपन के भयावह संत्रास को भी बड़ी सूक्ष्मता से चितेरा है।

'आपका बंटी' उपन्यास में मध्यवर्गीय पारिवारिक जीवन की जटिलता, समन्वय वृत्ति एवं सहनशीलता का अभाव, वैयक्तिक स्वतंत्रता और व्यक्तिगत सुख पाने की लालसा, टूटते दांपत्य जीवन आदि को यथार्थ रूप में अंकित किया गया है। बंटी का पूरा जीवन विषाक्त बन जाता है। इसका कारण है अजय और शकुन का अहंभाव। पश्चिमी समाज में नित्यप्रति बढ़ती है इस अहं की भावना से स्त्री-पुरुषों और बच्चों का जीवन विषाक्त हो रहा है और विष के यह किटाणु हमारे देश के शिक्षित समाज में भी फैल रहे हैं। अहं का प्राधान्य व्यक्ति को आत्मकेंद्री बनाता है। अतः वह कभी किसी से समझौता नहीं कर सकता। अतः 'आपका बंटी' उपन्यास के पात्र भी समझौता न कर सकने के कारण बिखर जाते हैं और अहं रूपी बैसाखियों पर खड़ी उनके व्यक्तित्व की इमारतें ढह जाती हैं। आज भौतिक तथा वैज्ञानिक विकास हो चुका है। साथ-ही-साथ आज के मानव ने एक-दूसरे की संवेदना, उनके मर्म, उनकी बातें आदि को सुनना, समझना और स्पर्श को महसूस करना भूला दिया है। प्रेम, वात्सल्य ममता की प्यासी आज की पीढ़ी उसकी ही प्रतिक्षा कर रही है, परंतु अंतर्गत द्वंद्व, संघर्ष के कारण मध्यवर्गीय परिवार की नींव टूट रही है।

देवेंद्र चौबे का कथन है- ''मन्नू भंडारी के 'आपका बंटी' के दंपत्ति अपनी-अपनी आकांक्षाओं और समस्याओं के द्‌वंद्‌व में इस कदर उलझते जा रहे हैं कि उनके पुत्र बंटी की जिंदगी अनिश्चितता और त्रासदी का प्रतीक बनकर रह जाता है।''[45] वास्तव में आज समाज जीवन की यही स्थिति-गति बन रही है। उपन्यास में लेखिका की संवेदनशीलता और शकुन से जादा बंटी के प्रति रही है। बंटी अपनी आयु से कहीं ज्यादा देखता, सोचता और अनुभव करता है। यह कुछ हद तक अस्वाभाविक-सा लगता है, परंतु परिस्थिति के कारण बंटी को ऐसा बनना पड़ा।

भाषा की दृष्टि से 'आपका बंटी' सहज-संप्रेषणीय भाषा और शिल्प की दृष्टि से सहज सपाट शिल्प से सज्जित है। उपन्यास में अधिकांश एकलाप शैली के द्‌वारा कथानक का विकास किया गया है। बंटी की जादातर भावनाएँ और प्रतिक्रियाएँ उसके अवचेतन मन में पनपती है। कहीं-कहीं संवाद शैली और वर्णन शैली का भी प्रयोग मिलता है।

अतः मन्नू भंडारी 'आपका बंटी' उपन्यास में बाल मन की मानसिकता तथा टूटते दांपत्य जीवन में बच्चों की अवहेलना को पूरी ताकत के साथ स्पष्ट करने में सफल हुई है। मध्यवर्ग के दांपत्य जीवन की यह कथा दबाने के बोझ में बाल मन की कथा, छोटी उम्र में अधिक सोचने की विवशता, पति-पत्नी के बीच अहं का बढ़ना, एक-दूसरे को नीचा दिखाने की प्रवृत्ति का बढ़ना आदि में खंडित टूटे परिवार को यहाँ चित्रित किया है, अतः इस दृष्टि से एक चिंतनीय कृति है।

निष्कर्ष -

प्रस्तुत अध्याय में आलोच्य उपन्यासों की विषयवस्तु पर प्रकाश डाला है। अध्याय आरंभ में कथ्य की परिभाषा एवं स्वरूप को स्पष्ट किया है और आलोच्य उपन्यासों की विषयवस्तु का समीक्षात्मक विवेचन प्रस्तुत किया गया है। साठोत्तरी कालखंड में हिंदी उपन्यासों का रूप विस्तृत एवं बहुमुखी हुआ है। किसी एक विशिष्ट धर्म को केंद्र में रखकर उनका जीवन चित्रित किया जाने लगा है। भारतीय समाज व्यवस्था वर्गगत रही है। वर्ग स्तर के कारण समाज की एकजूटता टूट रही है। साहित्य में भी मध्यवर्ग संघर्ष का चित्रण हो रहा है, इसमें पढ़ा-लिखा, धनवान, उच्चवर्ग हो या अर्थाभाव, अज्ञान गरीबी में जीवनयापन करनेवाला निम्नवर्ग हो तथा दोनों के बीच में रहनेवाला मध्यवर्ग। आज के साहित्य में मध्यवर्ग और निम्नवर्ग का वास्तविक चित्रण हुआ है।

शिक्षा प्रसार, नागरीकरण, पाश्चात्य सभ्यता का प्रभाव आदि के कारण मध्यवर्ग और निम्नवर्ग की स्थिति में धीरे-धीरे परिवर्तन हो रहा है। साहित्यकारों ने अपनी रचनाओं के द्‌वारा उस पर प्रकाश डाला है। इसी वर्ग से जुड़े साहित्यकारों ने अपनी अनुभवों को शब्दबद्‌ध करने का प्रयास किया है। इसी कारण साहित्य ने अछूत विषयों को उठाया है।

मध्यवर्ग एक ऐसा वर्ग है जो न विकसित है और न पिछड़ा। नगर तथा महानगरों में विकास करके सफेदपोश जिंदगी जीनेवाला है। हर स्थिति में सोचनेवाला यह वर्ग अंत में संताप, ऊबन, दुःख से ग्रस्त होता है। विवाह, दांपत्य, संतान, स्वास्थ्य, अर्थ, भौतिक सुख आदि में अनेक समस्याओं के साथ संघर्ष करनेवाला मध्यवर्ग आधुनिक उपन्यास का केंद्र बना है। इसके कारण सिर्फ पति-पत्नी के संबंध टूटते नहीं बल्कि उसका अधिक बुरा असर बच्चों पर होता है। इन्हीं बालकों का मनोविज्ञान तथा मनस्थिति शोचनीय बन गई है। इसकी ओर हिंदी के आलोच्य उपन्यासकारों ने संकेत किया है।

दांपत्य जीवन में टूटनशीलता आने से परिवार संस्था खतरे में पड़ी है, परिणामतः समाज स्वास्थ्य नहीं रहा है। इसका परिणाम विकास पर होता है, भौतिक विकास होगा लेकिन आदमी का नैतिक विकास घटेगा। आलोच्य उपन्यासकारों में दांपत्य जीवन की टूटनशीलता का वास्तविक चित्रण किया है। आधुनिक मानव किताबें पढ़कर 'साक्षर' बना है, परंतु सुसंस्कृत नहीं बना। कौन किसके लिए ? रिश्तों को महत्त्व न देनेवाली यह नई पीढ़ी भविष्य में अकेली बनेगी ? यही चेतावनी दी है।

राजेंद्र यादव द्‌वारा लिखित 'शह और मात' (1959) में उदय और सुजाता के द्‌वारा लेखकीय कर्तव्य तथा लेखकीय समस्याओं को रूपायित किया गया है। इस उपन्यास में मध्यवर्गीय व्यक्तियों की आर्थिक विफलता और मानसिक विवशता को स्पष्ट किया गया है।

मोहन राकेश ने 'अंधेरे बंद कमरे' (1961) उपन्यास में हरबंस और नीलिमा के माध्यम से टूटते दांपत्य जीवन और मध्यवर्गीय व्यक्तियों में बढ़ते अलगाव, घुटन, संत्रास, अजनबीपन, अकेलापन आदि को चित्रित किया है। इसमें महानगरों का सांस्कृतिक पतन तथा नगरों में रहनेवाले व्यक्तियों की अभिशप्त नियति को स्पष्ट किया है।

निर्मल वर्मा कृत 'वे दिन' (1964) उपन्यास में चेकोस्लावाकिया की राजधानी प्राग में 'मैं' (कथानायक) ने ऑस्ट्रियन पति परित्यक्ता युवती रायना के साथ बिताए तीन दिनों की कहानी है। इस उपन्यास में युरोप की महायुद्धोत्तर दिशाहीन पीढ़ी के संत्रास, घुटन, तनाव, मूल्यहीनता और रीतापन आदि का लेखा-जोखा प्रस्तुत किया है। इसमें मानवी जीवन का व्यर्थता-बोध, अतृप्त लालसाएँ, कुंठाएँ, अनैतिक आचरण, मानवी जीवन की अभिशप्त स्थिति एवं नियति को स्पष्ट किया है।

मन्नू भंडारी कृत उपन्यास 'आपका बंटी' (1971) में महानगरीय मध्यवर्गीय परिवार के तलाकशुदा दांपत्य जीवन के प्रभाव से निर्दोष बालकों के पीसते जीवन को 'बंटी' के द्वारा स्पष्ट किया है। यह एक बाल मनोवैज्ञानिक उपन्यास है। इसमें आधुनिक पति-पत्नी शकुन और अजय के अहं के टकराव तथा तनाव से उत्पन्न स्थितियों के बीच 'बंटी' की दयनीय स्थिति का चित्रण किया है।

अतः स्पष्ट है आलोच्य उपन्यासकारों ने महानगरों में रहनेवाले आधुनिक दांपत्य जीवन का वास्तविक चित्रण किया है। नगरों का जीवन भौतिक विकास से परिपूर्ण है, परंतु पारिवारिक समृद्धि की दृष्टि में अधूरा है। जब तक माता-पिता अपनी संतान की ओर, उसके भविष्य की ओर ध्यान नहीं देंगे तब तक दोनों में आपसी प्रेम नहीं रहेगा। एक-दूसरे के प्रति संघर्ष के कारण मध्यवर्ग दिशाहीन बन रहा है, जो समाज के लिए अहितकारी होगा। देश की हानी होगी। संपन्न, सुखी, प्रगत देश निर्माण के लिए सशक्त मध्यवर्ग का होना जरूरी है। इसकी ओर आलोच्य उपन्यासकारों ने संकेत किया। मध्यवर्ग की स्थिति-गति, दशा-दिशा को चित्रित करनेवाली ये रचनाएँ समाज जीवन का दर्पण है। मध्यवर्ग के कश्मकश की कहानी है।

संदर्भ सूची

1. Edwin Muir - The structure of the Novel, P. 16
2. त्रिभुवन सिंह - हिंदी उपन्यास और यथार्थवाद, पृ. 124
3. राजेंद्र यादव - शह और मात, पृ. 64-65
4. वही, पृ. 76
5. वही, पृ. 108
6. वही, पृ. 111
7. वही, पृ. 123
8. वही, पृ. 189
9. वही, पृ. 191
10. डॉ. चमनलाल गुप्ता - मोहन राकेश के कथा-साहित्य में मानवीय संबंध, पृ. 82
11. मोहन राकेश - अंधेरे बंद कमरे, पृ. 51
12. वही, पृ. 55
13. वही, पृ. 92
14. वही, पृ. 123
15. वही, पृ. 133
16. वही, पृ. 193
17. वही, पृ. 256
18. वही, पृ. 311
19. डॉ. शशिभूषण सिंहल - हिंदी उपन्यास : यात्रा गाथा, पृ. 152
20. डॉ. पारूकांत देसाई - साठोत्तरी हिंदी उपन्यास, पृ. 149
21. डॉ. लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय - हिंदी उपन्यास उपलब्धियाँ, पृ. 138
22. डॉ. इंद्रनाथ मदान - हिंदी उपन्यास पहचान और परख, पृ. 91
23. निर्मल वर्मा - वे दिन, पृ. 2

24. निर्मल वर्मा - वे दिन, पृ. 243
25. वही, पृ. 35
26. डॉ. अतुलवीर अरोडा - आधुनिकता के संदर्भ में आज का हिंदी उपन्यास, पृ. 211
27. निर्मल वर्मा - वे दिन, पृ. 117
28. वही, पृ. 129
29. वही, पृ. 148
30. वही, पृ. 240
31. वही, पृ. 240-41
32. मन्नू भंडारी - आपका बंटी, पृ. 17
33. डॉ. व्यंकटेश्वर - आठवें दशक के हिंदी उपन्यासों का मनोवैज्ञानिक अध्ययन, पृ. 72
34. मन्नू भंडारी - आपका बंटी, पृ. 26
35. वही, पृ. 31
36. वही, पृ. 33
37. डॉ. मोहम्मद ढेरीवाला - आधुनिक हिंदी उपन्यासों में नारी के विविध रूपों का चित्रण, पृ. 122
38. रामदरश मिश्र - हिंदी उपन्यासों के सौ वर्ष, पृ. 373
39. मन्नू भंडारी - आपका बंटी, पृ. 41
40. मन्नू भंडारी - आपका बंटी की भूमिका, पृ. 5
41. प्रकर - मई-जून, 1972, पृ. 46
42. मन्नू भंडारी - आपका बंटी, पृ. 114
43. डॉ. मृत्युंजय उपाध्याय, स्वातंत्र्योत्तर हिंदी उपन्यासों का स्वरूप, पृ. 102
44. मन्नू भंडारी - आपका बंटी, भूमिका (जन्मपत्री बंटी की), पृ. 4
45. हंस - जनवरी-1999, पृ. 139